* श्रीः *

पर्वोत्सव-विवरण

लेखक

" सुदर्शन "

प्रकाशक

भार्गव पुस्तकालय,

गायघाट, बनारस ।

प्रथम बार सन् १९४० मूल्य ॥=)

प्रकाशक
भार्गव पुस्तकालय,
गायघाट, बनारस।

मुद्रक
पं० कैलासनाथ भार्गव,
भार्गवभूषण प्रेस, बनारस।

समर्पण

श्यामसुन्दर !

इसमें मेरा तो कुछ है नहीं। तुम्हीं ने
कृष्णाद्वैपायन का रूप लेकर जो कुछ
विधान किया है, मैं उसका केवल
एक तुच्छ अंश संग्रह कर सका
हूँ। यह तुम्हारी ही कृति
है, अतः इसे तुम्हारे ही
चरणों में रखता हूँ।
स्वीकार करना
व्रजेन्द्र !

तुम्हारा—
"सुदर्शन"

यह कहावत सोलह आने से भी अधिक सत्य है कि हिन्दू समाज में "सात दिन में नौ त्योहार" पड़ते हैं। आप अन्त में दी हुई सूची को देखेंगे तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक तिथि को कोई न कोई पर्व पड़ता है। प्रत्येक दिन पर्व और प्रत्येक तिथि पर्व, इस प्रकार प्रतिदिन दो पर्व तो सामान्यतया हो गये। किसी-किसी तिथि में चार-चार, पाँच-पाँच पर्व आ पड़ते हैं। सारांश यह है कि पूरे वर्ष में दिन या रात्रि का कोई एक भी ऐसा घण्टा नहीं, जिसमें कोई उत्सव न हो।

इतने पर्वों के पड़ने का सबसे सीधा अर्थ है कि हमारा धर्म जीवन को निष्क्रिय छोड़ना पसन्द नहीं करता। सुस्ती और मनहूसी को उसमें स्थान नहीं। वह जीवन को प्रतिक्षण उत्साहित रखने के पक्ष में है। इसके लिये इतने उत्सवों की व्यवस्था है। नित्य नवीन उत्सव मनाओ। सदा आनन्द से उल्लसित रहो। किसी भी समाज के लिये इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी कि उसमें सर्वदा उत्साह और हर्ष उल्लसित रहे।

मनुष्य के परम दुर्लभ शरीर को प्राप्त करने का यह अर्थ नहीं कि उसे खाने पीने मौज करने में नष्ट कर दिया जावे। यह सब तो निकृष्ट शरीरों में भी हो सकते हैं। इस देवदुर्लभ शरीर के द्वारा तो मानव को संसृति चक्र से त्राण पाना है। वही श्रेष्ठ समाज है जो मनुष्य को इस वास्तविक लक्ष्य की ओर प्रेरित करता है। जो समाज इस ओर मानव को प्रोत्साहित नहीं करता, उसमें और पशु समाज में कोई अन्तर नहीं।

आनन्द सत्वगुण का स्वरूप है। आनन्द मानव को आत्मा के सन्निकट ले जाता है। किन्तु यदि आनन्द में संयम न होकर उच्छृंखलता हो तो वह प्रमाद बन जाता है। उसमें काम, क्रोध, हिंसा प्रभृति रजोगुण एवं तमोगुण की आसुरी वृत्तियों का समावेश हो जाता है। वह आनन्द विषय में सुख की भ्रान्ति का पोषण करके मनुष्य के अधःपतन का कारण बन जाता है। जहाँ संयमपूर्ण आनन्दोल्लास मनुष्य को देवता बना देता है, वहीं प्रमत्त आनन्दोन्माद उसे पिशाचों की श्रेणी में ला पटकता है।

आवश्यकता है कि मानव का जीवन आनन्दित हो, उल्लसित हो और साथ ही संयमित भी हो। धर्म और समाज की सृष्टि इसीलिये की गई है कि वह मानव को आनन्दित करते हुए भी नियम में रखें। उसे अपने वास्तविक लक्ष्य से विमुख न होने दें। उसके लिये आध्यात्मिक प्रगति का यथासम्भव अधिक से अधिक अवसर उपस्थित करें।

अब हिन्दू समाज के इन नित्य नवीन पर्वों पर दृष्टिपात कीजिये। उनमें क्या है? व्रत, पूजन, हवन, जप, दान और तीर्थस्नान पर सत्संग। प्रत्येक पर्व संयम से भरा है। पर्व तो नित्य आता है, अतः जीवन का एक क्षण भी ऐसा नहीं बचता जो असंयम के प्रेत के लिये खाली छूटा हो। अहर्निश भगवान की उपासना, अहर्निश सात्विक कर्म और सर्वदा नवीन उत्साह। यदि कोई सब पर्वों को मनावे तो उसे मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्षप्राप्ति के लिये कोई भी दूसरा साधन करने की आवश्यकता नहीं।

आनन्द का कितना सात्विक रूप है "मैं आज भगवान का व्रत कर रहा हूँ, इतना जप करना है, इतने विप्रों को भोजन कराना है, भगवान की पूजा का इतना सम्भार करना है" आदि। मन को ऊबने का तनिक भी अवकाश नहीं, उसके लिये सर्वदा नवीन उत्सव,

नवीन कार्य और नवीन उपासना क्रम उपस्थित रहता है। महर्षियों ने समाज के जीवन को पूर्ण संयत, पूर्ण सात्विक और सदा आनन्दमय रखने की यह व्यवस्था की है।

पर्वों के समय, उनमें होनेवाली क्रियाओं और उनकी रीति को देखकर कोई भी बुद्धिमान उनकी उपयोगिता माने बिना रह नहीं सकता। सामाजिक एवं शारीरिक दृष्टि से उनके द्वारा स्वास्थ्य-रक्षा और संगठन का सुदृढ़ प्रबन्ध कर दिया गया है। वे ऐसे काल और अवस्था के क्रम से पड़ते हैं कि उनके अनुगमन से समाज प्रत्येक भौतिक विकारों से सुरक्षित रह सकता है। आये हुए विकार दूर भी हो सकते हैं। कुछ पर्वों के विवेचन में मैंने इस विषय का स्पष्टीकरण किया भी है।

आज की नवीन लहर समस्त प्राचीन प्रगतियों की उपेक्षा करके बढ़ रही है। नव्य समाज परंपरागत पद्धतियों को बिना विचारे छोड़ने पर तुला है। ऐसे समय में इन थोड़े से पर्वों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न इसलिये किया गया है कि उनपर समाज की पद्धतियों में संशयास्पद लोग विचार कर सकें और उनके लाभ को समझ सकें। साथ ही सर्वसाधारण को अपने पर्वों का थोड़ा परिचय भी मिल जावे।

रविवार
श्रावण शुक्ल ६ सं० १६६६ वि०
"संकीर्तन" कार्यालय, मेरठ
ता० २०-८-१६३६ ई०

लेखक

अनुक्रमणिका

* श्रीहरिः *

पर्वोत्सव-विवरण

१—गुरुपूर्णिमा

आषाढ़ शुक्ल १५ को गुरुपूर्णिमा या व्यासपूर्णिमा कहा जाता है। इस दिन हरिपूजन, कोकिलाव्रत, अम्बिकाव्रत, शिवपूजन, व्यासपूजन और गुरुपूजन का विधान है। पूजन एवं व्रत के लिये सायंकाल तक रहनेवाली पूर्णिमा का ग्रहण करना चाहिये।

इस दिन शिष्य कहीं भी हो, उसे श्री गुरुदेव के चरणों में उपस्थित होकर पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पुष्प, धूप, दीप आदि से विधिवत् उनकी पूजा करनी चाहिये। यथाशक्ति दक्षिणा देकर स्तुति करना चाहिये। वस्त्र, आभूषण, गौ, अन्न आदि जो कुछ दे सके देना चाहिये।

गुरुमहिमा शास्त्रों में भरी पड़ी है। गुरु को साक्षात् परमेश्वर बतलाया गया है। गुरु अकेला ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों का स्वरूप है। सच्चा गुरुभक्त शिष्य केवल गुरु की कृपा से वह सब अभीष्ट प्राप्त कर सकता है जो अनेकों साधनों से भी सुलभ नहीं। गुरुभक्त के लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं। जो ज्ञानदाता गुरु की अवहेलना करता है, वह अधोगति को प्राप्त होता है।

श्रीहरि साक्षात् ज्ञानघन हैं। गुरु की सम्पूर्ण मूर्ति उन्हीं में मिलती है। वे जगद्गुरुओं के भी गुरु हैं। अतः उनका प्रथम पूजन

होना ही चाहिये। भगवान् शंकर सम्पूर्ण विद्याओं के 'प्रथमाचार्य हैं। लगभग सभी साधनमार्गों के आप उपदेष्टा हैं। आदि गुरु भगवान् शिव हैं। गुरुपूर्णिमा के समय उनका पूजन आवश्यक है। वर्तमान काल में जितना ज्ञान है, वह भगवान् व्यास से आया है। श्रीहरि ने स्वयं व्यास का अवतार धारण करके जीवों पर कृपा करने के लिये शाखाओं में वेदों का विभाजन किया। महाभारत, पुराण, ब्रह्मसूत्र प्रभृति का निर्माण करके वह वैदिक ज्ञान लोगों के लिये सुलभ बनाया। आज सबसे प्रधान जगद्गुरु माने जाने योग्य व्यास भगवान् के अतिरिक्त और कौन होगा ?

स्त्रियों के गुरु पति होते हैं। साध्वी स्त्री को पति के अतिरिक्त दूसरे किसीको गुरु बनाने की आज्ञा नहीं है। पति आज्ञा से बनाना पड़े तो दूसरी बात। जिनके पति नहीं हैं, उनकी पूज्या माता पार्वती तो हैं ही। नारी मात्र की वही आराध्य और गुरु हैं। आज स्त्रियों को पार्वती और पति की पूजा करनी चाहिये।

उपरोक्त पूजन का क्रम यह होगा कि स्नानादि से निवृत्त होकर पहिले भगवान् विष्णु का, फिर शंकरजी का (शिवोपासक पहिले शंकरजी और तब विष्णु भगवान् का) फिर *भगवान् व्यास* का पूजन करके अपने स्वगुरु का पूजन किया जावे। गुरुपूजा का यह उत्सव प्रायः सभी धर्म और समाजों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है।

२—नागपंचमी

श्रावण शुक्ल पंचमी को प्रातः मातायें द्वार के दोनों ओर दीवाल पर गोबर या कोयले से सर्पों की मूर्ति बनाती हैं। विधान गोबर से ही बनाने का है। उसकी फिर पुष्प, लाजा, अक्षत और दुग्ध से पूजा होती है। जहाँ साँप का बिल बस्ती से बाहर हो, वहाँ लाजा और दूध नाग के निमित्त रखा जाता है। नागपूजा के पश्चात् इन्द्राणी की पूजा करनी चाहिये।

नागपूजा के पश्चात् बस्ती के लोग अखाड़ों पर जाते हैं और वहाँ मल्लयुद्ध होता है। प्रातः बच्चों को उनकी प्रसन्नता की खाद्य वस्तुयें दी जाती हैं। पशुओं को धोकर उनके शृंगादि सजाये जाते हैं। इस प्रकार यह पर्व एक शौर्य और उत्साहपूर्ण पर्व हो जाता है।

"अनन्तश्चास्मि नागानां" कहकर भगवान् ने नागों के महत्व को स्वीकार किया है। नागपूजा अनन्त भगवान् शेष की पूजा है। पुराणों में लिखा है कि जो नागपंचमी को नागमूर्ति बनाकर विधिवत् उसकी पूजा करता है, उसे सर्पों से भय नहीं होता। सर्पों की वृद्धि वर्षाऋतु में होती है। इन्हीं दिनों सर्पों का अधिक भय रहता है। अतएव ऐसे ही समय में नागपूजा का विधान है।

नाग बल को भी कहते हैं। अत्यन्त बलवान् होने के कारण सर्प बल के प्रतीक माने जाते हैं। मेरा अपना ऐसा अनुमान है कि नागपंचमी वस्तुतः बल की पूजा करने के लिये ऋषियों ने प्रचलित की थी। बल के प्रतीक सर्प की पूजा उन्होंने गौणतया रखा। प्रचलित अखाड़ों में जाने की प्रथा इस अनुमान को और पुष्ट करती है।

प्राण ही बल है। प्राण का एक नाम नाग भी है। प्राण की गति सर्पाकार है। नागपूजा वस्तुतः प्राणशक्ति की पूजा है। अखाड़ों में जाकर

हम इस प्राणशक्ति को पुष्ट कर सकते हैं। नागपंचमी का सन्देश है कि प्राणशक्ति की पूजा करो! उसे उपार्जित करो! उसकी प्राप्ति के लिये अखाड़ों की शरण लो! व्यायाम करो और दूध, घी आदि पौष्टिक भोजन करो। पौष्टिक भोजन के लिये आवश्यक है कि गौ हमारे पास अच्छी और पर्याप्त हों। इस दिन पशुओं का सत्कार यह बात सूचित करता है। वर्षा में जब कि पाचनशक्ति कम हो जाती है, प्राणशक्ति और उसके वर्धक व्यायाम की ओर समाज का ध्यान जाना ही चाहिये। ऐसा न होनेपर अनेक रोगों के होने का भय रहेगा। नागपंचमी सहज ही इस आवश्यक कार्य की पूर्ति कर देती है।

३—तुलसीजयन्ती

संसार के प्रायः सभी समाज और धर्म के लोग महापुरुषों का स्मृतिदिवस मनाते हैं। अधिकांशतः वे अपने महापुरुषों की मरणतिथि मनाते हैं। पर हिंदू धर्म की यह विशेषता है कि हमारे यहाँ मरणतिथि न मनाकर जन्मतिथि मनाई जाती है। कोई कारण नहीं है कि गोस्वामी तुलसीदासजी के सम्बन्ध में इससे विपरीत प्रथा पड़ी हो। हमारे मत से तुलसीजयन्ती गोस्वामीजी की जन्मतिथि होनी चाहिये। वस्तुतः गोस्वामीजी के मरणकाल के सम्बन्ध में यह दोहा है—

"सम्वत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावन स्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो सरीर॥"

इसी दोहे के तीसरे चरण को "श्रावण शुक्ला सप्तमी" कर लेने या भूल से हो जाने से यह गोस्वामीजी की निधनतिथि प्रचलित हो गई। वास्तव में उनके जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा है—

"पन्द्रह सै चौवन विषै, कालिन्दी के तीर।
श्रावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेउ सरीर॥"

अस्तु—निश्चित यह रहा कि श्रावण शुक्ला सप्तमी श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की जन्मतिथि है और इसलिये इस दिन उनकी जयन्ती मनाई जाती है। 'श्री रामचरित मानस' की रचना करके गोस्वामीजी ने हिन्दूधर्म एवं विश्व का जो उपकार किया है वह भूला नहीं जा सकता। 'मानस' राम-भक्तों का सर्वस्व है, तथा समाज के लिये आदर्श पथ-दर्शक। ऐसे महान ग्रन्थ के प्रणेता की स्मृति मनाना हमारे अपने कल्याण में सहायक है।

इस दिन रामायण का पाठ, रघुनाथजी और महावीरजी की पूजा तथा गोस्वामीजी के चरित्र का मनन करना चाहिये। गोस्वामीजी के दूसरे ग्रन्थ विनयपत्रिका, कवितावली रामायण प्रभृति का भी पाठ होना चाहिये। यथाशक्ति राम नाम का जप और कीर्तन करना चाहिये।

पूज्य गोस्वामीजी को जो कुछ भी कहना था, वह उन्होंने अपनी रामायण में कह दिया। उससे अधिक कहने के लिये कुछ शेष रहता ही नहीं। समाज, राजनीति, धर्म, अध्यात्म प्रायः सभी विषय 'मानस' में पूर्ण हो गये हैं। अतः आज 'मानस' का पाठ और उसका मनन आवश्यक है। जिन केशरी किशोर की कृपा से गोस्वामीजी ने अपने राघव को पाया, उनकी पूजा भी होनी चाहिये। तुलसी के जीवनधन राम नाम के जप का आज से व्रत लीजिये।

——

४—रक्षाबन्धन

श्रावण शुक्ल १५ ब्राह्मणों की श्रावणी कर्म का पवित्र पर्व है। श्रावणी एक वैदिक कर्म है और इसके लिये कार्यकालव्यापिनी तिथि ग्रहण की जाती है। जल के समीप जाकर तर्पण, श्राद्ध आदि करते हैं। यह कर्म आवश्यक है और द्विजमात्र—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को इसे करना चाहिये। इसी दिन उपनयन संस्कार करके विद्यार्थी गुरुगृह में वेदाध्ययन के लिये भेजे जाते थे।

रक्षाबन्धन का वैदिक स्वरूप तो उपरोक्त श्रावणी में था। फिर यह पर्व राखी के रूप में बदल गया। बहिनें इस दिन भाई की भुजा में सूत एवं रंगीन रुई से बनी राखी बाँधती हैं। इसका यह तात्पर्य समझा जाता है कि भाई उस राखी बाँधने वाली बहिन की रक्षा का उत्तरदायी है।

मुसलमानी युग में जब राजपूत नरेश संकट में थे, घिर जाने पर स्त्रियाँ दूसरे राजपूत राजा के पास राखी भेजती थीं। उस समय राखी की बड़ी महत्ता थी। शत्रु भी राखी पाकर शत्रुता भूल जाता था और राखी भेजनेवाली को अपनी धर्म बहिन समझकर उसकी सहायता में अपना प्राण दे देना गौरव की बात मानता था। जहाँगीर मुसलमान होते हुए भी एक राजपूत महिला की राखी पाकर उसकी रक्षा करने गया था।

राखी ने अपने प्रभाव से इतिहास में बड़े परिवर्तन किये हैं। पन्ना की राखी प्रसिद्ध है। दो राजपूताने की रियासतों में घोर शत्रुता थी। उनमें से एक पर मुसलमान सेना ने आक्रमण किया। किला घेर लिया गया। कई दिन बीत गये, पर घेरा उठा नहीं। पन्ना भी इसी घेरे में थी।

किसी प्रकार उसने शत्रु नरेश के पास राखी भेजी। जिस समय राखी पहुँची, वे सेना लेकर मुसलमानों की सहायता करने को प्रस्थान करने जा रहे थे। राखी मिलते ही बात उलट गई। उन्होंने मुसलमानों पर आक्रमण किया। किले के सैनिक भी बाहर आये और उन्हें विजय मिली। दोनों राज्य मित्र हो गये।

बहिनें भाइयों की भुजा में इस दिन राखी बाँधती हैं और भाई यथाशक्ति उन्हें उपहार देते हैं। केवल उपहार देने से बस नहीं होता। लाल रंग की राखी हमें अपने रक्त रंजित इतिहास का स्मरण दिलाती है। आज जब कि स्त्रियों पर नाना प्रकार के आक्रमण होते हैं, राखी हमसे कुछ चाहती है। वह कहती है कि बहिन ने तुम्हारी भुजा में लाल राखी बाँधकर यह आशा की है कि जबतक इस बलिष्ठ भुजा में तनिक भी रक्त शेष है, तुम सब प्रकार से उसकी रक्षा करोगे। आज के युवक क्या राखी के उद्देश को पूर्ण करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होंगे?

५—जन्माष्टमी

जन्माष्टमी इतना प्रसिद्ध और व्यापक पर्व है कि उसके विषय में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति कुछ जानता ही है। कंस, शिशुपाल, भौमासुर, जरासन्ध प्रभृति जब दुष्ट राजाओं का पृथ्वी पर प्राबल्य था, तब उस धर्म,-राजनीति, साम्य और स्वतन्त्रताशून्य घोर निशा में, भाद्रपद कृष्ण अष्टमी की तमसाच्छन्न रजनी में, कंस के कारागार के बन्दी वसुदेव और देवकी से, बुधवार को रोहिणी नक्षत्र में उस अलौकिक

साम्य, सत्य, ज्ञान, प्रेम, आनन्द और दया की मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र का उदय हुआ था। प्रतिवर्ष हम उसी पूर्णपुरुष की जयन्ती मनाते हैं।

सप्तमीविद्धा अष्टमी को व्रत नहीं होता। कोई उदया तिथि मानते हैं, कोई कार्यकाल की तिथि, कोई उदया में रोहिणी मानते हैं और कोई कार्यकाल में रोहिणी। इस प्रकार यह व्रत सम्प्रदाय भेद से कई दिनों पड़ता है। दिनभर निर्जल उपवास करके अर्धरात्रि में नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी और बलरामजी के साथ भगवान श्रीकृष्ण का विधिवत् पूजन करके तदनन्तर पंचामृत से स्नान कराके भोग लगाना चाहिये। भोग में धनियों की पंजीरी और फलाहार की वस्तुयें रखी जाती हैं। पूजन के पश्चात् पारण करके प्रसाद ग्रहण करने की विधि है। कहीं-कहीं दूसरे दिन पारण करने का विधान भी मिलता है। तीन प्रसिद्ध रात्रियों में से इसे मोहरात्रि कहते हैं। इस रात्रि को सोना निषिद्ध है। रात्रि जागरण करना चाहिये।

जन्माष्टमी के दूसरे दिन नन्दोत्सव या दधिकांदो मनाया जाता है। भगवान् पर केशर, कपूर, हल्दी आदि मिली दधि चढ़ाकर उसे लोगों के ऊपर परस्पर में डालकर गाते, बजाते, कीर्तन करते उत्सव मनाया जाता है। मिठाइयाँ लुटाई जाती हैं। इस प्रकार दूसरे दिन दिनभर उत्सव रहता है।

अन्धकार से प्रकाश आता है। जेल में बन्द बन्दियों में प्रभु प्रकट होते हैं। वस्तुतः भगवान् का निवास दीन और पीड़ितों में है उन पर जब आपत्ति का घोर अन्धकार छाया होता है, तो उसीमें वह दिव्य ज्योति प्रकट होती है। श्रीकृष्ण गौओं की सेवा में मिलते हैं। वे सरल गोप बालकों के मित्र हैं और कंस से क्रूर कुटिल बलवानों के काल।

जन्माष्टमी का संदेश कोई क्या कहेगा? श्रीकृष्ण का सन्देश उनकी गीता प्रत्यक्ष उपस्थित है। गीता का स्वाध्याय कीजिये, उसका मनन

कीजिये और उसके अनुसार जीवन को चलाइये । हिन्दू का समस्त दर्शन शास्त्र और कर्मयोग का तत्व इन सात सौ श्लोकों में भरा है । ऐसा कोई भी गूढ़ सन्देह नहीं, जो गीता में न हो । आज गीता का अवश्य स्वाध्याय कीजिये ।

६—कुशोत्पाटिनी अमावस्या

भाद्रपद कृष्ण ३० अमावस्या के दिन प्रातःस्नान करके, पृथ्वी खोदने का कोई हथियार लेकर कुश उखाड़ा जाता है । मूल समेत पूर्ण कुश लिये जाते हैं । दीमक लगे, जिनके पत्ते कीड़ों ने खा लिये हैं, जो अपवित्र स्थान पर उगे हैं या जिनके नोक सूखे अथवा कटे हैं, वे ग्रहण नहीं किये जाते । पूर्ण और शुद्ध कुशों को उखाड़ कर उनको धोकर मिट्टी से रहित किया जाता है । फिर उनके प्रोक्षादि संस्कार होते हैं । संस्कृत कुश सुखाकर सुरक्षित रख लिया जाता है और यही वर्ष भर उपयोग में आता है । नवीन कुश प्राप्त करके पुराने को त्याग देना चाहिये ।

हिन्दू-धर्म के प्रायः सभी कर्मों में कुश का उपयोग होता है । नित्य सन्ध्या से लेकर श्राद्ध पर्यन्त सब कहीं उसकी आवश्यकता है । कोई भी यज्ञ उसके बिना हो नहीं सकता । आसन, पवित्री, यज्ञ सामग्री, प्रोक्षणी, ब्रह्मदण्ड प्रभृति अनेकों कामों में उसका उपयोग है । वह अत्यन्त पवित्र माना जाता है ।

स्वास्थ्य के लिये कुश में एक अपूर्व शक्ति है । कुश स्पर्शित जल के छींटे कृमि नष्ट करने में बहुत समर्थ पाये गये हैं। कोई भी विद्युत् धारा कुश को पार नहीं कर पाती और स्वयं उसमें विद्युत् शक्ति है । उसके आसन पर बैठने से जप या ध्यान के समय उत्पन्न होनेवाली शक्ति पृथ्वी में जाकर नष्ट नहीं होती । साधक को उससे पवित्रता और शक्ति प्राप्त होती है ।

इस अमावस्या को ही कुश ग्रहण करने का भी कारण है । प्रत्येक औषधियों के परिपक्व होनेका अपना-अपना समय होता है । वे अपने समय पर ही पकती और पूर्ण शक्ति सम्पन्न होती हैं । औषधियों में रस का पाक चन्द्रमा की किरणों के संयोग से होता है । अतः औषधियों के पकने का समय चाद्रमास एवं तिथियों के अनुसार होता है । यही अमावस्या वह तिथि है जिस दिन कुश पूर्ण परिपक्व होकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सम्पन्न रहता है । इसके पश्चात् वह शक्तियाँ क्षीण होने लगती हैं ।

कुशोत्पाटन कार्य के लिये कार्यकालव्यापिनी अमावस्या का ग्रहण करना चाहिये । कुश नवीन बने हथियार से या शुद्ध किये से खोदना चाहिये । वर्ष भरके लिये शुद्धतापूर्वक रखना चाहिये । यदि आप कुश में जूठा हाथ लगा देंगे या किसी दूसरी प्रकार उसे अशुद्ध कर देंगे तो उसमें कीड़े लग जावेंगे । अन्यथा वह वर्षभर सुरक्षित रहेगा ।

७—हरितालिका तीज

यह एकमात्र स्त्रियों का व्रत है। भाद्रपद शुक्ल तृतीया को देवियाँ दिनभर निराहार रहकर रात्रि जागरण करती हैं। रात्रि भर वे उत्सव मनाते हुए गाती बजाती रहती हैं। इस दिन शिव-पार्वती का पूजन किया जाता है। स्थान भेद से और भी कई प्रकार की प्रथायें हैं। दूसरे दिन वे गौरी की उस मूर्ति को जो तीज के दिन पूजन के लिये बनाई गई थी, गाती बजाती हुई जाकर किसी जलाशय में विसर्जन कर देती हैं। इसे कज्जली तीज भी कहते हैं।

कुमारी कन्यायें और सौभाग्यवती स्त्रियाँ यह व्रत करती हैं। माता पार्वती को प्रसन्न करके वे सौभाग्य की अभिलाषा से यह अनुष्ठान करती हैं। इस दिन यथाशक्ति वे वस्त्राभरण का उपयोग करती हैं। पिता अपनी कन्याओं के लिये उनकी ससुराल में वस्त्रादि भेजते हैं। स्त्रियों का यह सर्वप्रधान पर्व माना जाता है।

कुमारी पार्वतीजी ने देवर्षि नारद के वचनों को प्रमाण मानकर अपने हृदयेश देवदेव महादेव की प्राप्ति के लिये इसी शुभ घड़ी में तपस्या प्रारम्भ किया था। उनकी तपस्या सफल हुई और वे अपने जीवनसर्वस्व से अभिन्न हो गईं। उसी पावन व्रत की स्मृति में अहोरात्रि उपवास करते हुए देवियाँ उन जगद्धात्री से सुख, संतति और सौभाग्य की कामना करती हैं।

गिरिजा की वह उग्र तपस्या, वह दृढ़ गुरुवचनों पर श्रद्धा और अचल पतिभक्ति इस पुण्य तिथि में देवियों को बहुत कुछ सिखलाती है। इसी निष्ठा के कारण शिव ने उन्हें अपने आधे अंग में स्थान दिया। इसी तपःप्रभाव से उन्होंने देवसेनापति कुमार कार्तिक और प्रथम

पूज्य गणेशजी जैसे पुत्ररत्न प्राप्त किये । अपनी सेवा, निष्ठा और भक्ति से पार्वती ने कामारि, योगीश, विरक्त शिरोमणि एवं प्रलयंकर पति को भी प्रसन्न कर लिया । वे उनसे अभिन्न हो गईं ।

रुद्र से अधिक क्रोधी, मुण्डमाली से अधिक विरूप, कामारि से अधिक असंग और श्मशानवासी से अधिक रूक्ष भी कोई पुरुष हो सकता है ? पर माता पार्वती की शिक्षा है कि यदि स्त्री सहनशील, पतिपरायणा और दृढ़ निष्ठावाली हो तो ऐसे पति की भी प्रिय हो सकती है। उसे भी अपने अनुकूल बना सकती है । तीज के हासोल्लास में इस शिक्षा को भूलना नहीं चाहिये । व्रत के पवित्र समय में इसपर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। संयमित होकर इस प्रशस्त पथ पर चलने का निश्चय करना चाहिये।

८—गणेशपूजन

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी का दिन था । माता पार्वती कैलाश के शिखर पर अपने अन्तःपुर में बैठी थीं और सखियाँ उन्हें उबटन लगा रही थीं । सहसा शंकरजी आ गये । पार्वती लज्जा से उठ खड़ी हुईं । शंकरजी के जाने पर सखियों ने कहा "द्वार पर एक ऐसा अपना गण होना चाहिये जो कम से कम शिवजी के आने की सूचना तो दे दिया करे।" उमा ने अपने अंग की मैल से एक पुतला बनाया और उसमें प्राण फूंक दिये। उसके हाथ में लाठी देकर कह दिया "द्वार पर खड़े रहो। मेरी आज्ञा के बिना कोई भीतर न आने पावे!" उस सुपुत्र ने आज्ञा का पालन किया।

जब शिवजी भीतर जाने लगे तो नये द्वारपाल ने उन्हें रोका।

बात बढ़ गई और गणों से युद्ध होने लगा। लाठी की मार से गण घायल होकर भाग गये। युद्ध ने जोर पकड़ा, सब देवता लड़ने आये और सबको उस शक्तिकुमार ने मार भगाया। इन्द्र, यम, वरुण, यहाँतक कि विष्णु भगवान् भी हार गये। अन्त में क्रुद्ध होकर शंकरजी ने त्रिशूल से उसका सिर काट लिया।

पुत्र की मृत्यु से क्रोधित शक्ति प्रलय करने पर उतारू हो गईं। अन्त में देवताओं ने पुत्र को जीवित करके प्रथम पूज्य बनाने का वचन देकर उन्हें शान्त किया। शंकरजी की आज्ञानुसार सद्योजात शिशु का मस्तक उसके धड़पर लगाना था। ऐसा मस्तक मिला हाथी के बच्चे का और वह कुमार गजानन हो गया। अपने बड़े भाई कुमार कार्तिक से लड़ते हुए एक बार एक दाँत टूट गया। गणेशजी तबसे एकदन्त हो गये।

अहंकाररूपी चूहा गणेशजी का वाहन है। ऋद्धि और सिद्धि उनकी दो पत्नियाँ हैं। वे विघ्नों के अधीश्वर और मंगल मूर्ति हैं। सबसे प्रथम उन्हीं की पूजा होती है। वे बुद्धि के देवता हैं। उनकी कृपा से विद्या और बुद्धि प्राप्त होती है। उनका सबसे प्रिय भोग है मोदक—लड्डू।

इस गणेश चतुर्थी या गणेशपूजन के दिन व्रत रहकर गणेशजी की पूजा की जाती है। सिन्दूर चढ़ाकर षोड़शोपचार से उनकी पूजा करके मोदक भोग लगाना चाहिये। पूजाकाल सन्ध्या को होता है और कार्यकालव्यापिनी तिथि ग्रहण की जाती है। इस दिन चन्द्र-दर्शन निषेध है।

विद्या, बुद्धि, ऋद्धि, सिद्धि की प्राप्ति और विघ्नों के निवारण के लिये गणेशजी का पूजन किया जाता है। उनकी मूर्ति हमें बतलाती है कि इन सबकी प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि पुरुष शक्तिशाली बने और साथ ही अहंकाररूपी चूहे पर अधिकार रखे। घमण्डी न बन जावे।

६—ऋषिपंचमी

भाद्रपद मास प्रायः पूरा ही व्रत का है। शुक्लपक्ष तो व्रतों से ही बीतता है। भाद्रपद की वायु शरीर के लिये स्वास्थ्यप्रद नहीं होती। इन दिनों पाचन यन्त्र बहुत कम काम करते हैं। अतः गरिष्ठ भोजन वर्जित किया गया है। फल और दूध पर निर्वाह करना इस मास में बहुत लाभप्रद रहता है। व्रतों का यह एक प्रत्यक्ष लाभ है। जो व्रतों के आध्यात्मिक लाभ को नहीं मानते उन्हें भी इस लाभ को स्वीकार करना होगा।

एक बात और भी ध्यान देने की है—भाद्रपद में प्रायः स्त्रियों के व्रत अधिक पड़ते हैं। इसका रहस्य स्पष्ट करने के लिये हम आपका ध्यान पशुवर्ग की ओर आकर्षित करते हैं। "गावो मृगा खगा नार्यो पुष्पिण्यः शरदा भवन्" की सत्यता आप पशु एवं पक्षीवर्ग में पावेंगे। शरद ऋतु में ही नारीवर्ग की गर्भाधानशक्ति पूर्ण विकास पाती है। मनुष्य जीवन प्रकृति से इतना दूर हो गया है कि कृत्रिमता के आदी मानव को प्रकृति की सूचनाओं की प्रतीति नहीं होती। अन्यथा मानव स्त्री भी शरद में ही मातृत्वशक्ति का पूर्ण विकाश पाती है। आवश्यक है कि गर्भाधान से पूर्व माता पूर्णतः स्वस्थ हो और उसका रक्त निर्मल हो। भाद्रपद शुक्लपक्ष पूरा इसीसे व्रतों से पूर्ण है। माताओं को पक्ष भर फलाहार पर बिताना पड़ता है। इससे यह लाभ होता है कि वे भाद्रपद के मलेरिया आदि रोगों से सुरक्षित रहती हैं। फलों के रस से रक्त शुद्ध हो जाता है और शरद में मातृत्वशक्ति के पूर्ण विकाश में किसी प्रकार की बाधा पड़ने का भय नहीं होता।

भाद्रपद शुक्ल पंचमी ऋषि पंचमी कही जाती है । इसे दधीचि जयन्ती भी कहते हैं । इसी तिथि में महर्षि दधीचि का जन्म हुआ था । इन्द्र के माँगने पर उन्होंने देवताओं को अपनी अस्थि दे दी । उसी अस्थि से वज्र बना, जिसके द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया । अपनी तपःपूत अस्थियों को दान करनेवाले दानी का स्मृतिदिवस मनाना आवश्यक है ।

मातायें इस दिन फलाहार करके ऋषिपूजन करती हैं । किसी जलाशय के पास गाती बजाती जाकर वहाँ ब्राह्मण का पूजन करती हैं और घर आकर ब्राह्मण भोजन कराती हैं । महर्षि दधीचि की स्मृति त्याग और तपस्या की स्मृति है । भारत का गौरव उसके तप और त्याग में है । परोपकार के लिये अपनी हड्डियों तक का दान कर देनेवाले महर्षि की स्मृति हममें परोपकार की उच्च भावना का संचार करेगी और उनकी महान् तपस्या कष्टसहिष्णुता देगी, यही इस पर्व का तात्पर्य है ।

१०—हलषष्ठी

कृषिप्रधान देश में हल की प्रधानता होनी अनिवार्य है और कन्हइया के अग्रज श्री हलधर को भी तो भारत नहीं भूल सकता । वे रोहिणी तनय श्री बलरामजी इसी भाद्रपद शुक्ल षष्ठी को गोकुल में बाबा नन्द के घर प्रकट हुए थे । यह उनकी पुण्य जयन्ती है ।

मातायें इस दिन हल से जोतकर उत्पन्न किया अन्न नहीं खातीं । तिन्नी के चावल इस पर्व के विशेष फलाहार में हैं । स्नानादि से निवृत्त होकर कृषकों के घर देवियाँ हल, बैल की पूजा करती हैं । इसके पश्चात् हलवाहे और गौ चरानेवाले को अन्न, वस्त्र प्रभृति उपहार में

दिया जाता है। सब कहीं इस दिन शेषावतार भगवान् बलराम की हल मूसलधारी मूर्ति की पूजा होनी चाहिये। पशुओं का यथोचित सत्कार करके उन्हें अन्न और तृण देना चाहिये।

नीले वस्त्र पहिने, एक में हल और एक में मूसल लिये स्वर्णवर्ण बलरामजी कृषि का साकार वेष धारण करते हैं। अन्न उत्पन्न होता है हल से। मूसल उसे भोजनोपयोगी बनाता है। उनका नीलाम्बर शस्यश्यामला पृथ्वी का प्रतीक है और शरीरका वर्ण पक्व धान्य का। इस दिन पूजा करनेवाले के घर धान्य की अच्छी उत्पत्ति होती है, ऐसा पुराणों में वर्णन है।

बलरामजी की जयन्ती जन्माष्टमी की ही भाँति स्त्री पुरुष सबको मनानी चाहिये, इसमें कोई विवाद नहीं। पर समय के फेर से पुरुषवर्ग ने इस पर्व की उपेक्षा की। इस दिन पशुओं से कोई कार्य नहीं लेना चाहिये। हलधर की पूजा के दिन हल बन्द रहे और पशुओं को सत्कृत किया जावे। साथ ही जो सम्पन्न हैं, जिनके हाथ में कृषकों का पोषण है, उन्हें समाज के इन पोषकों की सुविधा का उपाय सोचना और उसे काम में लाना चाहिये। समाज तभी सम्पन्न हो सकेगा जब उसका हलधर (कृषकवर्ग) सुखी और सम्पन्न हो।

बलरामजी कृषकवर्ग के प्रतीक हैं। वे दयालु, उदार और शान्त हैं। साथ ही उग्र, तेजस्वी और क्रोध आने पर महान् भयंकर हैं। कृषकवर्ग सा उदार और परिश्रमी हमें कहाँ मिलेगा ? वह अनेकों अत्याचारों को सहते हुए भी शान्त रहने वाला समाज है। पर यदि किसी प्रकार वह वर्ग क्रुद्ध हो उठे तो उसका प्रतिकार करना असम्भव है। उसे शान्त, सन्तुष्ट और सुखी रखकर ही समाज शान्त रह सकता है। हलधर की जयन्ती मनाइये और उस पोषक कृषकवर्ग की दशा सुधारने के लिये प्रयत्नशील बनिये।

११—सन्तानसप्तमी

लीलामय की लीला भी कितनी विचित्र है ! वे सर्वसमर्थ होते हुए भी जब मनुष्यों के आगे उज्वल आदर्श रखने के लिये मनुष्यता का नाट्य करने लगते हैं तो बुद्धि स्तम्भित हो जाती है। उनकी लीला से बड़े-बड़े ब्रह्मा और इन्द्र जैसे देवता भी मोहित हो जाते हैं। फिर बिचारी मानवबुद्धि की क्या गणना ?

लीलाधर केशव द्वारिका में विराज रहे थे। उन्होंने एक दो नहीं, पूरी सोलह सहस्र पत्नियाँ बना रखी थीं और आठ पट्टरानियाँ थीं। इन आठ में से रुक्मिणीजी और सत्यभामाजी को पुत्र हो चुके थे। जाम्बवतीजी की गोद खाली थी। वे सन्तान के लिये बहुत उत्सुक थीं और उन्होंने इसके लिये अपने प्राणाधार से प्रार्थना की। नटनागर को एक लीला द्वारा संसार को कुछ समझाना था। वे पुत्र-प्राप्ति के लिये तपस्या करने लगे। इस तप के द्वारा वे भगवान् शंकर को सन्तुष्ट करना चाहते थे।

शिव और कृष्ण परस्पर एक दूसरे के उपास्य और एक दूसरे के उपासक हैं। सच तो यह है कि वे परस्पर अभिन्न हैं। जबतक केशव की इच्छा रही, वे तपस्या करते रहे। जब उन्होंने चाहा, शंकरजी प्रकट हो गये। ढेरों वरदान मिला, जिसमें प्रत्येक पत्नी से दस पुत्र होनेका भी एक वरदान था। समय आया और भाद्रपद शुक्ल सप्तमी को जाम्बवतीजी की गोद साम्ब जैसे सुन्दर और सर्वगुणसम्पन्न पुत्र से भूषित हो गई। इसी की स्मृति में यह सन्तानसप्तमी मनाई जाती है।

सन्तानसप्तमी का यह व्रत होता है पुत्रप्राप्ति और प्राप्त पुत्रों की रक्षा तथा अभ्युदय के लिये। इस दिन शिवपार्वती का पूजन उपवास करते हुये किया जाता है जाम्बवती के साथ श्यामसुन्दर और शिशु साम्ब की पूजा भी करनी चाहिये। भगवान् शिव को दूध से स्नान कराया जाता है। माता पार्वती की पूजा करके उन उमा महेश्वर से पुत्र की प्राप्ति और उसके अभ्युदय की प्रार्थना करनी चाहिये। मातायें ही प्रायः यह व्रत करती हैं।

सन्तानसप्तमी हमें एक बात बतलाती है—पुत्र प्राप्त कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है। पुत्र को गुणसम्पन्न होना चाहिये। कुपुत्र वन्ध्यत्व से भी अधिक दुखद होता है। सुपुत्र प्राप्त करने के लिये पत्नी में पति के प्रति अगाढ़ प्रेम और निष्ठा होनी चाहिये। उसे इधर उधर झाड़ फूंक के फेर में न पड़कर पति की ही शरण लेनी चाहिये। दूषित एवं वासनापूर्ण वीर्य से उत्पन्न पुत्र सुपुत्र हो नहीं सकता। उसके लिये तपस्या करनी पड़ती है। पूर्ण सात्विक होकर जो गर्भाधान होगा, उसी से सत्पुत्र पाने की आशा की जा सकती है।

१२—राधाष्टमी

कन्हइया की अभिन्न बालसहचरी, तद्गतप्राणा और उसकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधिकाजी का कोई क्या परिचय देगा ! उनके प्रेम की तुलना विश्व में नहीं। अपने उसी अलौकिक प्रेम के कारण वे कृष्ण से अभिन्न हो गईं और आज हम "राधा कृष्ण" कहकर उनका स्मरण करते हैं। श्रीकृष्ण से जो अभिन्नता उन्होंने प्राप्त की, वह दूसरे के लिये असम्भव रही और सदा रहेगी। प्रेम के साम्राज्य की वे महारानी हैं और उनकी चरणरज मस्तक पर धारण करने के पश्चात् ही कोई इस राज्य में प्रवेश करने का अधिकार पाता है।

आज 'राधा कौन थीं ?' इस पर बड़ा वितण्डा चल रहा है। पुराणों में कल्पभेद से हमें श्रीराधिकाजी के तीन रूप मिलते हैं। आजन्म कुमारी, श्रीकृष्णचन्द्र की स्वकीया और उनकी परकीया प्रेयसी। वर्तमान कल्प के पुराणों के अनुसार वे आजन्म कुमारी हैं। उन्होंने कन्हइया को अपना अन्तर दिया और श्यामसुन्दर के मथुरा चले जाने पर आजन्म मूर्तिमान वियोग बनी हुई अपने व्रत पर स्थिर रहीं। एक कल्प में ब्रह्माजी ने श्यामसुन्दर से उनकी शादी कराई ऐसा वर्णन मिलता है। इसके अनुसार वे स्वकीया हैं।

सबसे अधिक विवाद उनके परकीया होने पर है। हमें इस विषय पर विचार करना चाहिये। यशोदाजी का एक भाई था रायण और उससे श्री राधिकाजी का विवाह हुआ था। श्रीकृष्ण वस्तुतः यशोदा-पुत्र तो थे नहीं, अतः इस नाते राधा उनकी मामी नहीं होतीं। रायण जन्म से नपुंसक था। अब सोचना यह है कि यदि भ्रम से किसी स्त्री का विवाह पुरुषवेशधारी स्त्री से अथवा हिंजड़े से हो जावे तो उसे

विवाह माना जावेगा या नहीं ? ब्रह्माजी ने कहा था कि ऐसा विवाह-विवाह नहीं है। उन्होंने पुनः गुप्तरीति से राधिकाजी की शादी केशव से कराई थी। यहां भी हम उन्हें परकीया नहीं कह सकते।

भाद्रपद शुक्ल अष्टमी थी जब बरसाने में बाबा वृषभानु के यहां माता कीर्ति की गोद ठीक दोपहर को गोलोक की उस प्रेमरूपिणी आह्लादिनी शक्ति से पूर्ण हुई थी। वह शक्ति आई थी विश्व को प्रेम का सन्देश देने। उसके सम्मुख प्रेम का क्रियात्मक पवित्र आदर्श रखने। उपासना की एक सर्वोच्च भूमिका की प्रतिष्ठा करने। केशव के मथुरा जाने पर उसने ब्रज में रहकर इनकी पूर्णता की।

श्रीकृष्ण में से राधा को और ब्रज को पृथक् कर दें तो वे केवल रूखे ज्ञानी और पटु नीतिज्ञमात्र रह जावेंगे। उनका आकर्षण, उनका माधुर्य ब्रज में है, विशेषकर ब्रजेश्वरी रासेश्वरी में। उनकी जयन्ती व्रत रहकर धूमधाम से मनाना चाहिये और उससे पवित्र प्रेम की शिक्षा लेनी चाहिये। प्रेम निःस्वार्थ, एकांगी और अहैतुक होता है। उसमें स्वार्थ और काम की गन्ध भी नहीं। यह शिक्षा श्रीराधा के जीवन से स्पष्ट मिलती है।

१३—वामन जयन्ती

देवता और दैत्य दोनों ने मिलकर क्षीरसागर का मन्थन करके अमृत निकाला । पर अमृत मिला देवताओं को और दैत्य सूखे रह गये । दैत्यों ने देवताओं पर रुष्ट होकर आक्रमण किया । जिन श्रीहरि की कृपा से देवताओं को अमृत मिला था, उन्हीं की कृपा से उन्हें विजय भी मिली । दैत्यराज वलि को गुफाओं की शरण लेनी पड़ी ।

गुरु और ब्राह्मणों के आश्रित सदा अपराजित रहे हैं । गुरु शुक्राचार्य की सेवा से दैत्यराज ने वह शक्ति प्राप्त की जो देवताओं के लिये अजेय थी । स्वर्ग छोड़कर देवता इन्द्र के साथ भागे और वलि वहां के अधिपति हुये । शुक्राचार्य ने वलि से अश्वमेध यज्ञ कराना आरम्भ किया । सौ अश्वमेध कराकर आचार्य वलि को विधिविहित शतक्रतु बना देना चाहते थे ।

पातिव्रत्य भी एक अपरिमेय शक्ति है । पुत्रों की जयकामना से देवमाता अदिति अपने पूज्य पति महर्षि कश्यप की शरणापन्न हुईं । महर्षि के आदेशानुसार उन्होंने अनुष्ठान किया और प्रकट होकर साक्षात् क्षीरसागरशायी उन्हें यह वरदान दे गये कि 'मैं आपका पुत्र होऊँगा ।" समय पर वे माता अदिति से एक वामन ब्रह्मचारी रूप में प्रकट हुये ।

वलि अन्तिम सौवां अश्वमेध कर रहे थे । उपनीत हुये भगवान् वामन छत्र, दण्ड एवं कमण्डलु लिये उनकी यज्ञशाला में पहुँचे । वलि ने उनका स्वागत किया और उसके कहने पर भगवान् ने तीन पद भूमि माँगी । आचार्य ने प्रभु को पहचाना, उन्होंने दैत्यराज को दान देने से रोका । पर वह मनस्वी अभीत था । दान का संकल्प लेने के

पश्चात् वामन विराट हो गये। एक पैर की लम्बाई में पूरी पृथ्वी आगई, दूसरे की एड़ी स्वर्ग में और अंगूठा ब्रह्मलोक से भी ऊपर पहुँचा। बलि ने तीसरे पैर के लिये अपना सिर रख दिया। भगवान् ने उसे बाँध लिया।

दयामय के दया की कोई सीमा नहीं। बंधन से खोलकर उन्होंने बलि को पाताल का राजा बनाया और स्वयं गदापाणि ने उसके द्वारपर रहने का वचन दिया। अगले कल्प में वे बलि को इन्द्र बनावेंगे। इसके पश्चात् भगवान् वामन उपेन्द्र होकर स्वर्ग में विराजे। संक्षिप्ततः यही वामन भगवान् का चरित्र है। माता अदिति में उनका प्राकट्य भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को हुआ था, अतः उस तिथि को वामनजयन्ती मनाई जाती है। व्रत रहते हुये वामन भगवान् की पूजा की जाती है। दैत्यराज बलि की पूजा की जाती है।

वामनजयन्ती हमें बतलाती है कि श्रीहरि से विमुख होकर किये हुये समस्त कर्म विफल होते हैं। गुरु और ब्राह्मणों का सच्चा सेवक विश्व को बड़ी से बड़ी शक्ति के लिये भी अजेय है। पतिव्रता के पातिव्रत्य में वह शक्ति है कि वह सर्वेश को भी अपनी इच्छानुसार चला सकती है। सबसे बड़ी बात यह कि केशव के चरणों में कोई किसी भी भाव से पहुँचे, उसका परमकल्याण हो ही जायगा।

१४—अनन्तचतुर्दशी
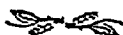
भाद्रपद शुक्लपक्ष की चतुर्दशी अनन्त चतुर्दशी होती है। उदया तिथि ग्रहण की जाती है। इस दिन व्रत रहकर दोपहर को अनन्त पूजा की जाती है। दोपहर को स्नान करके कलश स्थापन करे और उस कलश पर प्रथम गणेश की पूजा करके, कलश के ऊपर अष्टदल कमल बने बर्तन में कुशा से बने अनन्त की स्थापना करे। उसके समीप ही कुंकुम केशर रंजित सूत का अनन्त भी रख दे। अनन्त चौदह गाठों का बनाया जाता है। कुशा के अनन्त को नमस्कार करके विष्णु भगवान् का उसमें आवाहन और ध्यान करे। फिर प्रतिष्ठा, पाद्य, आचमन, धूप, दीप प्रभृति से सांगोपांग पूजा करनी चाहिये। पंचामृत में कुश के अनन्त को स्नान कराकर फिर शुद्ध जल में स्नान करावे और तब पूजा करे। फिर चौदहो गाठों में श्री, मोहिनी, पद्मा, महाबला, देवी, मंगला, जया, कामदा, शुभा, भद्रा, सुभद्रा, वरदा, सर्वांगा और लक्ष्मी देवी की पूजा करे और उनके देवता विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, ब्रह्मा, सहस्राक्ष, पिनाकी, गणेश, स्कन्द, सोम, वरुण, पृथ्वी और वासव की भी पूजा करे। फिर प्रणाम और स्तुतिकरके अनन्त सूत्र को स्त्री बायीं और पुरुष दाहिनी भुजा में बाँध ले। स्वर्ण या रौप्य अनन्त धारण करने वालों को सूत के बदले वह अनन्त रखकर पूजा करना चाहिये।

धन, पुत्र आदि की कामना से यह काम्य व्रत किया जाता है। स्त्री पुरुष सबको यह व्रत करना चाहिये। नवीन सूत्र के अनन्त को धारण करके पुराने को छोड़ दे। अन्त में ब्राह्मण को पूये दान करके व्रत का पारण करे। भविष्य पुराण में इस व्रत का माहात्म्य है। सुमन्तु ब्राह्मण की कन्या शीला का विवाह कौण्डिन्य ऋषि के साथ हुआ। मार्ग में

शीला ने स्त्रियों को अनन्त पूजा करते देख स्वयं भी पूजा करने का निश्चय किया और अनन्त धारण किया। अनन्त के प्रभाव से उसके घर में सम्पत्ति पूर्ण रहने लगी। दुर्भाग्य से कौण्डिन्य ने उसका अनन्त तोड़ दिया, फलतः सम्पत्ति नष्ट हो गई। अन्त में पुनः अनन्त भगवान को प्रसन्न करके उन्होंने अपनी सम्पत्ति प्राप्त की।

अनन्त की चौदह गाठें चौदह लोकों की प्रतीक हैं। "सूत्रे मणिगणा इव" भगवान् अनन्त उनमें व्याप्त हैं। वस्तुतः वे लोक उसी अव्यक्त सूत्र स्थानीय अनन्त से बने भी हैं। अनन्त की निर्माणप्रणाली हमें इसकी सम्यक् शिक्षा देती है। चौदह गांठ के अनन्त को धारण करके हमें चौदहों भुवनों में सूत्र की तरह व्याप्त और उनके निर्माता अनन्त को स्मरण रखना है। वह हममें है, हमें उसे पाना है। अनन्त के इस रहस्य को जानकर प्राप्त करने वाला वास्तविक सुख को अवश्य ही प्राप्त करता है।

१५–महालक्ष्मी-व्रत
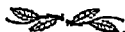
यह व्रत पड़ता है क्वार कृष्ण सप्तमी को। महालक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये इस दिन व्रत करते हुये उनका पूजन किया जाता है। सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये यह काम्य व्रत है। कहीं कहीं हाथी की पूजा भी प्रचलित है। प्रायः महालक्ष्मी की मूर्ति की सन्ध्या समय षोडशोपचार से अर्चना करते हैं और सुहृद सम्बन्धियों में नैवेद्य का वितरण करते हैं।

महर्षि दुर्वासा ने एक अप्सरा को सुन्दर माला लिये देखा और उसे मांग लिया। माला लिये हुये वे इन्द्र के पास पहुँचे। इन्द्र ऐरावत

पर बैठकर कहीं जा रहे थे। महर्षि ने माला देवराज को दी। इन्द्र ने उसे ऐरावत के मस्तक पर रखा और हाथी ने सूंड़ से उठाकर पृथ्वी में डाल पैरों से कुचल दिया। अपने प्रसाद का यह अपमान देख महर्षि क्रोधित हो उठे। उन्होंने शाप दिया कि त्रैलोक्य की श्री नष्ट हो जावे।

श्रीहीन देवताओं पर असुरों ने आक्रमण किया। देवता हार गये और स्वर्ग छोड़कर भागे। अन्त में भगवान् की शरण लेने पर दैत्यों से सन्धि करके अमृत के लिये समुद्र-मन्थन का आदेश मिला। इन्द्र ने जाकर यह प्रस्ताव दैत्यराज बलि के सम्मुख रखा और दैत्यों ने इसे स्वीकार कर लिया। वासुकी की रस्सी बनाकर, मन्दराचल के द्वारा समुद्र—मन्थन होने लगा। विष्णु भगवान् ने कच्छप अवतार धारण करके मन्दर को पीठपर धारण किया था।

समुद्र से सर्वप्रथम हालाहल निकला। लोकपालों की प्रार्थना पर शंकरजी ने उसका पान करके उसे कंठ में धारण कर लिया। उसके पश्चात् तेरह रत्न और निकले, जिनमें अन्तिम अमृत था। भगवान् ने मोहिनी रूप धारण करके दैत्यों को वंचित करते हुये देवताओं को अमृत पिलाया। इन्हीं रत्नों में महालक्ष्मीजी भी मानी जाती हैं। समुद्र से उनका प्राकट्य इसी आश्विन कृष्ण सप्तमी को हुआ था। जनार्दन को उन्होंने वरण किया और उनके हृदय में स्थान पाया। प्रभु कृपा से देवताओं को लक्ष्मी की अनुकम्पा प्राप्त हुई।

लक्ष्मी जयन्ती के दिन यह स्मरण रखिये कि महान् लोगों एवं पूज्यों के अपमान से लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। उसको प्राप्त करने के उद्योग में सर्वप्रथम हालाहल के समान कष्ट मिलता है। यदि धैर्य से उद्योग चलता रहा तो लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होगी। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि यह कृपा भी उन्हीं को मिलती है, जो भगवान् के आश्रित हैं। हरि से विमुख लोगों का परिश्रम प्रायः व्यर्थ जाता है। यदि उन्हें लक्ष्मी मिले भी तो वह अस्थायी और उनके नाश का हेतु होती है।

———

१६--जीवत्पुत्रिका व्रत

जिन माताओं के पुत्र जीवित हैं, वे क्वार कृष्ण अष्टमी को यह व्रत करती हैं। सप्तमी की सन्ध्या को उड़द भिगा दी जाती है, इसमें कहीं कहीं कुछ गेहूं भी मिला देते हैं। अष्टमी को प्रातः उनमें से कुछ दाने व्रतार्थी पूरे निगल लेता है और फिर दिन भर व्रत करता है। उड़द और गेहूं का दान किया जाता है। इस व्रत का उद्देश है कि पुत्र का अभ्युदय हो और उसपर कोई आपत्ति न आवे। यह काम्य व्रत है।

महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था। पाण्डव अपने शिविर में नहीं थे। रात्रि में अश्वस्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ आया और उसने सोते हुये सभी सैनिकों को मार डाला। शिविर में अग्नि लगा दी गई और भागने वाले कृपाचार्य एवं कृतवर्मा के हाथों मारे गये। अश्वस्थामा ने सोते हुये द्रौपदी के पांचो पुत्रों का सिर पाण्डव समझ कर काट लिया। शिविर सूना हो गया।

प्रातः केशव के साथ पाण्डव लौटे। शिविर की दशा पर उन्हें अपार कष्ट हुआ। द्रौपदी को सान्त्वना देने और बदला लेने के लिये अर्जुन ने केशव को सारथि बनाकर अश्वस्थामा का पीछा किया। अन्त में उसे बन्दी बनाकर ले आये। धर्मराज युधिष्ठिर के कहने और श्रीकृष्ण की सलाह से पार्थ ने सिर की मणि लेकर और केश मुण्डित करके गुरुपुत्र को बन्धनमुक्त कर दिया।

अपमान का बदला लेने के लिये अश्वस्थामा ने ब्रह्मशिरस नाम के अमोघ अस्त्र का प्रयोग किया। वह पाण्डव वंश का समूल नाश करना चाहता था, अतएव पाण्डवों के एकमात्र भावी वंशधर उत्तरा के गर्भ पर उसने अस्त्र प्रयोग किया। पाण्डव उस अस्त्र का प्रतिकार करने में अस-

मर्थ रहे। उन्होंने केशव की शरण ली। सूक्ष्मरूप से भगवान ने उत्तरा के उदर में प्रवेश करके गर्भ को पूर्णतः नष्ट होने से बचाया। इतने पर भी जब पुत्र हुआ तो वह मृतकप्राय था। भगवान् ने उसे जीवित किया। वही पुत्र पाण्डववंश का भावी सम्राट् परीक्षित था।

पुत्र को जीवनदान देने के कारण इस व्रत का नाम जीवत्पुत्रिका पड़ा। काले उड़दों का पूरा निगलना श्रीकृष्ण के सूक्ष्मरूप से उदरप्रवेश का सूचक है। यह व्रत बतलाता है कि भगवान् के शरणागत सम्पूर्ण आपत्तियों से सुरक्षित रहते हैं। कोई भी उन्हें हानि नहीं पहुँचा सकता। वास्तव में इसे परीक्षित जयन्ती कहना चाहिये। श्रीकृष्ण की पूजा और उनके द्वारा परीक्षित की गर्भ में रक्षा की कथा सुननी चाहिये। भगवान पर पूर्ण विश्वास और उनके प्रति सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण इस पर्व की प्रेरणा है।

१७–पितृविसर्जन

क्वार का पूरा कृष्णपक्ष पितृपक्ष कहा जाता है। पितरों के लिये श्राद्ध, तर्पण प्रभृति का यह विशेष समय है। नख एवं केश कटवाना, तेल लगाना, कपड़े धुलवाना, मांस भक्षण, सुरापान, स्त्रीसहवास प्रभृति सब इस पक्ष में वर्जित हैं। हो सके तो एकाहारी और भूमि पर या चौकी पर सोना चाहिये। भोजन के सामान्य पदार्थों में भी बहुत से चिचिड़ा, नेनुआं (बड़ी तोरई) गाजर आदि वर्जित माने जाते हैं। सबका तात्पर्य यह है कि वानप्रस्थ आश्रम के समान रहते हुये पितरों की तुष्टि के लिये पिण्ड दिया जावे।

पन्द्रह दिन के केश अन्तिम दिन मुण्डित होते हैं। क्वार कृष्ण अमावस्या को मुण्डन कराकर स्नानोपरान्त पितरों को अन्तिम पिण्ड देकर विसर्जित किया जाता है। इसी कारण इसे पितृविसर्जन कहते हैं। गया में इस पक्ष में और विशेषकर इस तिथि में पिण्ड देने का बहुत अधिक माहात्म्य है। जिन लोगों के माता पिता जीवित नहीं हैं, उन्हें संयमपूर्वक इस पक्ष में रहकर अवश्य तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये।

श्राद्ध क्यों किया जाता है? इस विषय पर मैं अपने "पुराण विज्ञान" में बहुत कुछ लिख चुका हूँ। पितृलोक का सम्बन्ध सूर्य से है और पृथ्वी तथा सूर्य की गति के कारण पितृपक्ष में उसका सम्बन्ध पृथ्वी से स्थापित होता है। इसी कारण इस पक्ष में श्राद्ध करने का विशेष महत्व है। यह ठीक है कि जिस जीवात्मा का जन्म किसी योनि में हो चुका हो, वह श्राद्ध पिण्ड नहीं प्राप्त कर सकती। साथही यह भी ठीक है कि मरने के पश्चात् तुरन्त ही जन्म होना निश्चित नहीं। कभी कभी युगों तक एक जीव पितृलोक में रहता है। हमें यह पता लग नहीं सकता कि किस जीव का जन्म हो गया और किसका नहीं। इन सब बातों को देखते हुये सभी मृत पुरुषों को जो अपने पूर्वज हैं, पिण्ड देना ठीक जान पड़ेगा।

शास्त्र श्राद्ध की महिमा से भरे हैं। वेदों में स्पष्ट श्राद्ध करने की आज्ञा है। गीता में अर्जुन ने कहा है "पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।" उपनिषदों एवं महाभारत में ऐसी कथायें हैं जिनके द्वारा श्राद्ध इतना अनिवार्य बताया गया है कि उसके लिये आजन्म ब्रह्मचारियों को भी विवाह करके वंशपरम्परा स्थापित रखने का आदेश दिया गया है। वेद और शास्त्रों पर जिनको श्रद्धा नहीं, उनकी तो बात दूसरी है। जो शास्त्रों और महर्षियों पर श्रद्धा विश्वास रखते हैं, उनके लिये श्राद्ध अनिवार्य कार्य है। अपने पूर्वजों का स्मृतिदिवस अन्य धर्मावलम्बी भी

मनाते ही हैं। यह कृतघ्नता और सामाजिक पतन होगा यदि पूर्वजों के लिये हम इतना संयम और कष्ट भी न उठा सकें और उससे बचने के लिये थोथे तर्कों का आश्रय ढूँढ़ें।

——

१८—सरस्वती-पूजन

विद्या और बुद्धि की देवी माता सरस्वती की प्रसन्नता किसे अभीष्ट नहीं। प्रत्येक व्यक्ति उनकी कृपा के लिये समुत्सुक रहता है। हंसवाहिनी, श्वेतकमलासना, दुग्धकान्ति, उज्वल वसनधारिणी, भगवती वीणापाणि की आराधना मनुष्य को प्रतिभाशाली बनाती है। क्वार शुक्ल अष्टमी को वर्ष में उनकी पूजा का विशेष पर्व पड़ता है। प्राचीन काल में प्रत्येक आचार्यकुल में यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। इस दिन सब विद्यार्थी, आचार्य, पंडित और दूसरे विद्वान् विद्या की देवी की आराधना करते थे। वेदपाठ, हवन और सामगान से आकाश पवित्र हो जाता था।

इस दिन समस्त शिक्षा-संस्थाओं को सामूहिक रूप से और दूसरे लोगों को अपने परिवार में सरस्वतीपूजन करना चाहिये। प्रातः स्नानोपरान्त विधिपूर्वक हंसवाहिनी भगवती का आह्वान तथा पूजन करके यथाशक्ति हवन करना चाहिये। वाग्बीज (ऐं) का जप भी हो तो अच्छा है। स्थान को श्वेत वस्त्रों एवं श्वेत पुष्पों से सजाना चाहिये। तीसरे प्रहर के पश्चात् शिक्षा-संस्थाओं में या किसी सार्वजनिक

स्थान पर शास्त्र-चर्चा, कवितापाठ, कथा एवं विद्या के महत्त्व पर प्रवचन होना चाहिये।

सरस्वती का सच्चा पूजन है ज्ञान का अर्जन और दान। जो अशिक्षित हैं उन्हें शिक्षा ग्रहण करने को तत्पर होना चाहिये। जो शिक्षित हैं उन्हें आस-पास के अनपढ़ लोगों को शिक्षित करने का आज से व्रत लेना चाहिये और स्वयं अपने लिये किसी अपरिचित विषय को पूर्ण करने में लग जाना चाहिये। यही ज्ञान की देवी का वास्तविक आराधन है।

तनिक भगवती सरस्वती के रूप पर भी विचार कर लें। उनका वस्त्र, आसन और वर्ण सब श्वेत है। उनके कर में मोहक मूर्छनामंडित वीणा विराजती है। उनका वाहन है नीर-क्षीरविवेकी हंस। इस मूर्ति में ज्ञान का पूर्ण स्वरूप निहित है। ज्ञान श्वेत है—निष्कलंक, निर्दोष। उसका पवित्र संगीत विश्व को आनन्दित करता है। वही सच्चा ज्ञान है, वही सच्ची विद्या है जो विश्व में शान्ति और आनन्द का प्रसार करे। जिसके द्वारा भय और विभीषिका फैले, वह तो ज्ञान का दुरुपयोग है। वह विद्या आसुरी विद्या है। इसके साथ ही ज्ञान में भले-बुरे को पहचानने की शक्ति होती ही है।

सरस्वती की पूजा, ज्ञान की आराधना, विद्या का अर्जन, सब एक ही बात हैं। यह ज्ञान की देवी के आविर्भाव का दिन है। यह उनकी पवित्र जयन्ती है। इस दिन से आपको उनकी सच्ची आराधना का व्रत लेना है। ऐश्वर्य और सम्मान तो उनके चरणों में निवास करते हैं। अतः आज प्रेम से उनकी पूजा करके ज्ञानार्जन का व्रत लीजिये!

१९—दुर्गानवमी

विश्व शक्ति का साम्राज्य है। यहाँ की सब कुछ शक्ति है। जिसमें शक्ति है, वह श्रेष्ठ और सुखी है। शक्तिहीन पीड़ित है, दलित है और नश्वर है। प्रकृति में शक्तिहीन के लिये स्थान नहीं। शक्ति उसे नष्ट करके शक्तिशालियों के लिये स्थान खाली कर देती है। इस शक्ति की प्राप्ति के लिये हमें विश्वविधायिनी शक्ति की आराधना करनी होगी। समाज में शक्ति लाने के लिये शक्ति पूजा आवश्यक है।

क्वार शुक्ल नवमी शक्ति पूजा का दिन है। बंगाल में यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। देवताओं की प्रार्थना पर आदि-शक्ति ने प्रकट होकर इस दिन देव और विप्रों को पीड़ा देने वाले घोर पराक्रमी दैत्य महिषासुर का वध किया था। उन्हें भक्त महिषमर्दिनी दुर्गा नाम से पुकारते हैं। यह उनकी पुण्य जयन्ती है। दोपहर के समय देवी की रक्त पुष्प, रक्तवस्त्र प्रभृति से विधिपूर्वक पूजा की जाती है।

महिषासुर-वध की स्मृति में भैंसे या बकरे के बलिदान की प्रथा बहुत स्थानों में प्रचलित है। पशु-वध से भगवती प्रसन्न होती हैं, यह एक असंगत कल्पना है। जगन्माता कभी अपने किसी शिशु का बलिदान नहीं चाहेगी। कुछ शास्त्रों में बलिदान की चर्चा है, अतः हमें उसे समझ लेना चाहिये। विश्व त्रिगुणात्मक है, अतएव उपासना भी त्रिधा है। यह भेद लोगों की प्रवृत्ति भेद से है, देवता के स्वरूप भेद से नहीं। बलिदान राजस और विशेषतः तामस लोगों की आसुरी पूजा है। उसका भी तात्पर्य मांसाहार को सीमित करने में है। अतः बलिदान का न करना ही उत्तम मार्ग है।

माता दुर्गा असुरविनाशिनि और सुरपालिका हैं, यह बात हृदय में बैठा लेना चाहिये। आसुरी कार्य करने वाला, लोगों को कष्ट देने वाला, धार्मिकों एवं दीनों को पीड़ित करने वाला उनके द्वारा अवश्य दण्ड पावेगा। वे सात्विक, नम्र, सदाचारी और धार्मिकों की रक्षिका हैं। उनकी पुकार पर वे खड्ग उठाकर भी उनकी रक्षा करती हैं।

महिषासुर इतना बलवान् था कि सब देवता उससे हार गये थे। आसुरी और उद्धत शक्ति कितनी भी बढ़ जाय तो क्या हुआ? यह तो हो सकता है कि वह सात्विक लोगों को कुछ दिन पीड़ित कर ले, पर उसका विनाश अवश्यम्भावी है। महाशक्ति शुद्ध सात्विक है और सात्विक लोगों की रक्षा के लिये वह आसुरी शक्ति का विनाश करती है।

शक्ति की पूजा के इस दिन शक्ति की आराधना कीजिये। उसकी आराधना केवल पुष्पों से नहीं होती, पुष्पों के अतिरिक्त उसकी सच्ची उपासना होती है अपने को शक्तिशाली बनाकर। वह कायरों की नहीं—शूरों की आराध्या है। उसकी पूजा के लिये शक्तिमान बनो! तुम्हारी शक्ति दीनों एवं पीड़ितों की रक्षा के लिये हो!!

——

१०--विजयादशमी

कितना सुन्दर क्रम है—क्वार शुक्ल अष्टमी को सरस्वतीपूजन, नवमी को शक्तिपूजन और दशमी को विजयापर्व। विजय के लिये सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त करो, फिर शक्ति प्रस्तुत करो और तब विजय तुम्हारी है। यह क्रम सुन्दरता से इन पर्वों में सूचित किया गया है। सबसे प्रधान ज्ञान है और उसके पश्चात् शक्ति। दोनों का संयोग ही विजय का कारण होता है।

इस दशमी का नाम विजया पड़ने के कई कारण हैं। भगवती का एक नाम 'विजया' है। उनकी इस दिन पूजा होने से विजयादशमी कहते हैं। भगवान् राम ने इसी दिन लंका विजय के लिये प्रस्थान किया था। कुछ लोगों के मत से इसी दिन रावण को मारकर विजय प्राप्त की थी। यह भी पर्व के नाम का एक कारण है। पाण्डव जब अज्ञातवास के लिये विराट नगर में जाने लगे थे तब उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र एक शमी के पेड़ पर रख दिये थे। कौरवों ने जब विराट की गायें हरण कीं, तब विराट के पुत्र उत्तर के साथ अर्जुन उस शमी वृक्ष के पास आये और उस पर से अपने अस्त्र लेकर उन्होंने कौरवों पर अकेले विजय प्राप्त की। शमीपूजन और पर्व के नाम पड़ने का यह भी एक कारण है। देवी ने नवमी को जब महिषासुर को मार डाला तो देवताओं ने दशमी को विजयोत्सव मनाया था। इस प्रकार और भी कई कथायें हैं।

इस दिन प्रत्येक राजा के लिये विजय यात्रा की आज्ञा है। पर्व के नाम का यह प्रधान कारण है। इसे सीमोल्लंघन पर्व कहते हैं। राजा को अपनी दक्षिण ओर की सीमा पार करके दूसरे के देश में जाना

चाहिये और उत्तरी सीमा की रक्षा करनी चाहिये, जिससे दूसरा उसके देश में न आ जावे। इस प्रकार वर्ष में एक दिन युद्ध प्रत्येक नरेश के लिये अनिवार्य है।

सैनिकों को यदि युद्ध न करना पड़े तो वे सुस्त और विलासी हो जाते हैं। यह आवश्यक है कि रक्षकवर्ग में युद्ध की इच्छा जागृत रहे। इस बात को देखते हुए उपरोक्त विधान उचित प्रतीत होता है। आजकल इस सीमोल्लंघन का तो अवसर रहा नहीं; फलतः अहेरिया अर्थात् आखेट का दिन लोगों ने इसे बना डाला। इस दिन राजपूताने में राजा पूरी सेना के साथ शिकार को निकलता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे कोई न कोई शिकार अवश्य मिले। यह शुभ शकुन माना जाता है। विजय प्रयाण का यह विकृत रूप कुछ अच्छा नहीं। बेचारे पशुओं को रक्षित जंगलों में घेरकर मारना वीरता का उपहास और नृशंसता है।

वर्ष में श्रावणी ब्राह्मणों का पर्व, विजयादशमी क्षत्रियों का, दीपावली वैश्यों का और होली शूद्रों का पर्व है। अपने से निम्नवर्ण के पर्व में उच्च वर्ण के लोग सम्मिलित हों ऐसा नियम है। समाज में ऐसी ही प्रथा भी है। विजयादशमी का यह पर्व क्षत्रियों का है। इस दिन देशान्तर-यात्रा भी शुभ मानी जाती है

पर्व के लिये श्रवणनक्षत्रयुक्त, प्रदोषव्यापिनी, नवमीविद्धा दशमी प्रशस्त होती है विजय यात्रा का मुहूर्त अपराह्नकाल, श्रवणनक्षत्र और दशमी के प्रारम्भ होने का समय माना गया है। मतान्तर में तारे उगने का समय विजय मुहूर्त मानते हैं। इस दिन के प्रधान कृत्य हैं दुर्गा विसर्जन, नवरात्र पारण, अपराजिता-पूजन, शमीपूजन और विजय प्रयाण। शाम को इस दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ माना जाता है।

नवरात्र का पारण नवमी विद्धा दशमी में प्रातः करके देवी का विसर्जन करना चाहिये। यदि दशमी नवमी विद्धा न हो तो यह

कृत्य नवमी के दिन हो जावेंगे । विधिपूर्वक पूजन करके देवी का विसर्जन होना चाहिये । अपराह्न समय अपने रहने से ईशान दिशा में शुद्ध भूमि में चन्दन, कुंकुमादि से अष्टदल कमल बनाकर उसपर अपराजिता देवी का आह्वान एव सम्पूर्ण सामग्रियों से पूजा करना चाहिये । अपराजिता के साथ जया तथा विजया देवियों का पूजन भी करना चाहिये ।

इसके अनन्तर शमी वृक्ष के पास जाकर अमंगल, पाप एवं दुःस्वप्न-नाशक शमी देवी का पूजन उस शमी वृक्ष में विधिविहित ढंग से करना चाहिये । शमी की पूजा और प्रार्थना करके, उस वृक्ष के जड़ की मिट्टी लेकर गायन वाद्य के साथ घर लौटना चाहिये । वह मिट्टी किसी पवित्र स्थान पर रख देना चाहिये । दुर्गा विसर्जन के साथ पिछले वर्ष की मिट्टी पृथक् कर दी जाती है । इस दिन जो शमी के पत्ते तोड़ने या डाल काटकर पूजा करने की कहीं-कहीं प्रथा है, वह. उचित नहीं । पूजा के दिन वृक्ष का कोई भाग काटा या तोड़ा नहीं जाना चाहिये ।

बंगाल में यह उत्सव बड़े उत्साह से मनाया जाता है । अनेकों प्रकार की मूर्तियाँ और दृश्य बनाये जाते हैं । बंगाल का यह सर्वश्रेष्ठ पर्व है । प्रायः पूरे उत्तर भारतवर्ष में प्रत्येक नगर और कसबों में इन दिनों रामलीला होती रहती है और इस दिन रावण-वध होता है । सब कहीं मेले लगते हैं ।

विजयादशमी बतलाती है कि नारी जाति का अपमान करके लंका जैसा रावण से रक्षित राज्य नष्ट हो गया । विजय के लिये शक्ति की पूजा सिखलाना और शक्तिवर्ग के प्रति सम्मान यह इस पर्व का लक्ष्य है । वर्षा की स्थगित यात्रायें इसी सुसमय में प्रारम्भ होती हैं । शत्रु राष्ट्र पर आक्रमण के लिये न सही, पर स्वात्मरक्षा के लिये अवश्य है कि सेना वर्ष में एक बार प्रदर्शन करे । सभी राष्ट्र ऐसा प्रदर्शन वर्ष में एक दिन करते हैं । यह भारतीय सेना का प्रदर्शन पर्व है ।

११—शरद-पूर्णिमा

यमुना का पुलिन सायंकालीन सूर्य की किरणों से अरुण हो रहा था। उधर प्राची में चन्द्रमा का उदय होनेवाला था। श्यामसुन्दर वहाँ पहुँचे और उन्होंने उगते हुए चन्द्रमा को देखा। पिछले वर्ष कार्तिक स्नान करके उन्हें पतिरूप से प्राप्त करने के लिये देवीपूजा करनेवाली कुमारिकाओं को चीर हरण के अवसर पर दिये गये वरदान का स्मरण हो आया। वे पुष्पित वनावली में और मुरली अधरों से जा लगी।

गोपियों ने उस विश्वविमोहन स्वर लहरी को सुना और मन्त्र मुग्ध की भाँति उसी ओर दौड़ पड़ीं। प्रथम तो मोहन ने उन्हें शिक्षा देकर लौटने को आग्रह किया, पर सच्चे प्रेमी कहीं लौटा करते हैं? मुरली फिर बजी और मुरलीधर प्रसन्न गोपियों के समूह में मुस्कराते खड़े हो गये। दुर्भाग्य से गोपियों में मान आया। तुरन्त मदहारी अन्तर्हित हो गया। एक प्रधान गोपी (श्री राधाजी) वन में साथ गईं, किन्तु मान ने उन्हें भी वियुक्त कर दिया।

वियोग में ही प्रेम का विकास होता है। गोपियों में आत्मविस्मृति, प्रियप्रतीति, स्वरूपोपलब्धि प्रभृति सभी उच्च भावों का विकास हुआ। अन्त में उनके आर्तक्रन्दन ने दयामय को पुनः खींच लिया। रासविहारी की मुरली पुनः बजी। योगेश्वर की लीला से वे सब गोपियों को अपने समीप ही दिखाई देते थे। सब मुरली के स्वर पर मंडल बनाकर नृत्य करने लगीं। इसी क्रीड़ा का नाम रास है। जब वे श्रान्त हो गईं तो उनके साथ श्यामसुन्दर कालिन्दी में प्रविष्ट हुए। कुछ देर

जल विहार होता रहा । अन्त में प्रातः होने के समय मोहन के अनुरोध से सब घरों को लौटीं ।

वह पुण्यरात्रि आश्विन शुक्लपक्ष की पूर्णिमा थी । इसीसे उसे रासपूर्णिमा भी कहते हैं । ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा वर्ष में केवल इसी दिन षोडश कलाओं से प्रकाशित होता है । इस दिन रात्रि के समय चाँदनी में भगवान श्रीकृष्ण की गोपियों सहित पूजा की जाती है । दुग्ध की खीर जो शाम को बनाकर चौड़े बर्तन में चाँदनी में रखी होती है, वही भगवान को भोग लगाया जाता है । रात्रि भर जागरण करके चाँदनी में रखी हुई इस खीर को प्रातः चार बजे स्नान करके भोजन करने से अनेक रोगों की शान्ति होती है । यदि इस खीर में पीपल की लकड़ी का टुकड़ा बनाते समय डाला गया हो तो वह श्वास रोग को अच्छा करती है ।

भक्ति की सबसे उच्च भूमिका मधुरभाव की है । रास उसकी पराकाष्ठा है । केवल अधिकारी लोगों को उसके श्रवण चिन्तन से लाभ हो सकता है । अनधिकारी उससे हानि ही उठावेगा । प्रभु की अतर्क्य लीलाओं में सन्देह को स्थान नहीं । वे भक्तों के कल्याण के लिये ऐसी लीलायें करते हैं ।

११-दीपावली

पुराणों में वर्णव्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ण के लिये एक पर्व निश्चित किया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि उस पर्व को केवल उसी वर्ण के लोग मनाते हैं। अर्थ यह है कि उस पर्व में उस निश्चित वर्ण के व्यवसाय को प्रोत्साहन देनेका कार्य सम्पूर्ण समाज सम्मिलित रूप से करता है। यह दीपावली पर्व वैश्यवर्ण का है। इसमें पूरा समाज आर्थिक उन्नति का प्रयत्न करता एवं धन की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी का पूजन करता है।

दीपावली वस्तुतः तीन पर्वों का एक समुदाय है। इसमें धनतेरस, नरकचतुर्दशी और महालक्ष्मी पूजन ये तीनों सम्मिलित हैं। कहते हैं कि भगवान वामन ने इन्हीं तीनों दिनों में विराट रूप धारण करके बलि के तीनों लोकों को नापा था। वरदान माँगने को कहने पर बलि ने कहा "जो इन तीनों दिनों में आपका पूजन करे, उसे आर्थिक कष्ट कभी न हो और मरने पर वह आपके धाम को पावे।" उसी समय से इन तीनों दिनों में दिवाली मनाई जाने लगी।

धनतेरस या धन्वन्तरि जयन्ती—कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धनतेरस कहा जाता है। जिस दिन यह तिथि सन्ध्या तक हो, उसी दिन पर्व मनाया जाता है। ठीक इसी दिन आयुर्वेद के आचार्य भगवान धन्वन्तरि जी का प्राकट्य हुआ है, अतः श्री धन्वन्तरि जयन्ती भी इसी दिन मनाई जाती है। वैद्य लोग विशेष कर इस दिन धन्वन्तरि जी की पूजा करते हैं। रोगों से सुरक्षित रहने के लिये सभी को यह पूजा करनी चाहिये।

इस दिन सन्ध्या समय एक दीपक घर से बाहर कूड़े के ऊपर या नाली के ऊपर यमराज के लिये दिया जाता है। यमराज को यह दीपदान करके अपमृत्यु से रक्षा करने के लिये उनसे प्रार्थना करना चाहिये। इस दिन गोपूजन का भी विधान है, पर आजकल उसकी प्रथा नहीं रही।

नरक चतुर्दशी—धनतेरस के दूसरे दिन यह चतुर्दशी मनाई जाती है। यह भी उसी दिन मनाना चाहिये जिस दिन चन्द्रोदय तक हो। कहीं-कहीं इसे छोटी दिवाली भी कहते हैं। इसी दिन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने देवताओं को दुख देनेवाले नरकासुर (भौमासुर) को मारा था। उसी विजय के उपलक्ष्य में यह पर्व मनाया जाता है।

नरक चतुर्दशी के दिन प्रातः तेल लगाकर अपामार्ग (चिड़चिड़ा) और चकवक से शरीर का प्रोक्षण करके और उसे चारो ओर घुमाकर तब स्नान करे। इस दिन जिनके माता पिता जीते हैं, वे भी यम और भीष्म को जलांजलि दें। जिन्हें वर्ष भर चोरों से सुरक्षित रहना हो उन्हें इस प्रकार अवश्य स्नान करना चाहिये, ऐसा पुराणों में लिखा है। इस दिन सन्ध्या को यम के लिये चार बत्ती का एक दीपक सर्व प्रथम देना चाहिये। यह दीपदान नर्क यातना की निवृत्ति के लिये किया जाता है।

महालक्ष्मी-पूजन—अमावस्या के इसी पर्व को लोग दीपावली कहते हैं। जिस दिन अमावस्या आधीरात तक हो उसी दिन पर्व मनाया जावेगा। शास्त्रों में इस रात्रि को महारात्रि कहा गया है। सन्ध्या से रात्रिभर घर का प्रत्येक भाग प्रकाशित रखकर पूरी रात्रि जागरण करने का विधान है। यदि शरीर सशक्त हो तो इस दिन निर्जल व्रत करना चाहिये। अन्यथा फल या दूध लेना चाहिये।

रात्रि में विधिपूर्वक महालक्ष्मी (रुपये का नहीं) का एवं कुबेर का पूजन करना चाहिये। फिर प्रातः दधि, दूध आदि से पार्वण श्राद्ध

करके पुनः पुनः महालक्ष्मी को दीपदान करके तब स्वयं श्वेत वस्त्र पहने हुए भोजन करे। इस दिन श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्प ही पहने और पूजा के काम में ले।

रात्रि के पिछले प्रहर में स्त्रियाँ सूप प्रभृति बजाती हुई दरिद्र को घर से निकालती हैं और ग्राम सीमा तक जाकर वह सूप फेंक कर लौट आती हैं। भविष्य पुराण में यह क्रिया आधीरात को करने के लिये कहा गया है। इस दिन पूजा में तुलसी का उपयोग वर्जित है। महालक्ष्मी के साथ इन्द्र और कुबेर की पूजा भी करना चाहिये।

धनतेरस से पूर्व ही घर द्वार सब लीप पोत कर स्वच्छ हो जाने चाहिये। वर्षा के पश्चात् भौतिक दृष्टि से भी यह स्वच्छता आवश्यक है। वर्षा से उत्पन्न रोगकारक कीड़ों को यह स्वच्छता और प्रकाश नष्ट कर देता है। दूसरी बात यह है कि इस बाह्य स्वच्छता में अन्तर की स्वच्छता का संकेत छिपा है। यदि हमने केवल बाहर सफाई और प्रकाश किया तो दीपावली को ठीक समझा ही नहीं। हृदय और समाज में आई सम्पूर्ण गन्दगी को इस बाहरी गन्दगी के साथ साफ कर देना है। ज्ञान और ऐक्य के प्रकाश से उसे प्रकाशमय बनाना है। इतना करके ही हम महालक्ष्मी की पूजा के सच्चे अधिकारी बन सकते हैं और निश्चय ही तब वे जगन्माता पधारेंगी।

१३—अन्नकूट

वेदों में इन्द्र, वरुण, अग्नि प्रभृति की पूजा का विधान है। पुराने समय में इन्हीं देवताओं की विशेष पूजा होती थी। इन्द्र की पूजा द्वापर तक होती रही। इन्द्र को गर्व था कि मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ। गर्वहारी भगवान को देवराज का यह गर्व नष्ट करना था। जब गोकुल के गोप नन्द बाबा के साथ इन्द्र की पूजा का सम्भार करने लगे तो श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें रोक दिया। इन्द्र के बदले उन्होंने गौओं और गोवर्धन की पूजा कराई।

इन्द्र बहुत रुष्ट हुए। व्रज पर प्रलय वृष्टि और वज्रपात होने लगा। बड़े-बड़े ओलों की झड़ी लग गई। आँधी का वेग अपने पूरे जोर पर था। यह दशा घण्टे दो घण्टे नहीं—पूरे सात दिन, सात रात्रि रही। किन्तु "सूरश्याम ताको काको डर जेहि वन सिंह कन्हाई" श्यामसुन्दर ने प्रारम्भ में ही गोवर्धन को वाम हस्त पर उठा लिया था। गोप अपने परिवार और गौवों के साथ उस पर्वतराज के नीचे सुरक्षित थे। व्रजराज के सामने देवराज का सब प्रयत्न विफल हो गया।

वर्षा बन्द हुई। धूप निकली और व्रज के गोपों का कार्य पूर्ववत् चलने लगा। गोवर्धन अपने स्थान पर रख दिये गये थे। हारे हुए इन्द्र केशव से क्षमा माँगने आये। सुरभी ने उन्हें गौवों के इन्द्र पद पर अभिषिक्त करके गोपाल से गोविन्द बना दिया।

कार्तिक शुक्ल परिवा को भगवान ने गोवर्धन का पूजन कराया था। तब से यह इन्द्रपूजा का दिन गौ और गोवर्धनपूजा में बदल गया। व्रजराज ने आशीर्वाद दे रखा है कि इस दिन जो गौवों का, गोपाल का

और गोवर्धन का विधिवत पूजन करेगा, उसके यहाँ सम्पत्ति एवं पशुओं की वृद्धि होगी। सुवृष्टि होगी और अन्न अच्छे उत्पन्न होंगे।

अन्नकूट मनाने के लिये ऐसी प्रतिपदा ग्रहण की जाती है जिसमें शाम को द्वितीया न हो जावे। चन्द्रदर्शन इस पर्व में अशुभ माना जाता है। यदि प्रतिपदा में द्वितीया हो तो अमावस्या को अन्नकूट होता है और चतुर्दशी को दीपावली। नरक चतुर्दशी तथा धनतेरस भी एक एक दिन पहिले हो जाती हैं।

अन्नकूट के दिन प्रातः तैलमर्दन करके स्नान करना चाहिये। गोपूजन कहीं कहीं प्रातः और कहीं दोपहर को होता है। स्नान करके गाय के पैर धोये। उन्हें लक्ष्मी का स्वरूप मानकर फूल, माला, अक्षत, धूप, दीप से सविधि पूजन करे। फिर गायों को सुन्दर पदार्थ खिलाकर आरती और प्रदक्षिणा करके पूजन समाप्त करे।

यथाशक्ति अनेक प्रकार के पक्वान्न बनाकर उसका ढेर लगाकर उसके बीच में श्रीकृष्ण की मूर्ति रखकर उसकी पूजा करना चाहिये। गोबर से गोवर्धन और श्रीकृष्ण की मूर्ति बनाकर भी पूजा करने की प्रथा है। अन्नकूट के दिन नाना पक्वान्नों का ढेर लगाकर उसका भोग लगाने की प्रधानता है।

अन्नकूट के दिन सन्ध्या समय दैत्यराज बलि का पूजन करने का विधान है। बलि की सविधि पूजा करके उन्हें दीपदान करना चाहिये। बलि-पूजा के लिये अमावस्या विद्धा प्रतिपदा आवश्यक है और पूजा ठीक सन्ध्या समय गोधूलि बेला में करना चाहिये।

गौ और गोपाल के पूजन के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। गाय की महत्ता शास्त्रों में भरी पड़ी है। श्रीकृष्ण के समान गोभक्त भी कोई नहीं हुआ। अतः उनकी पूजा हमें गोरक्षा की महत्ता की सूचना देती है। हममें गौओं के प्रति कृतज्ञता और सेवा की

भावना का संचार करती है, जो भारत जैसे कृषिप्रधान देश के लिये परमावश्यक है ।

पुराणों में एक आज्ञा है "द्यूतं चापि समाचरेत्" इसीके आधार पर दिवाली और अन्नकूट को जुआ खेलने की प्रथा चल पड़ी । बात यह है कि भगवान ने वामन रूप धारण करके दीपावली के दिन छल से दैत्यराज बलि को बाँधा था । अन्नकूट के दिन उन परमदानी बलि ने विराट प्रभु के चरणों में शेष तीसरे पग भूमि के बदले अपना मस्तक रख दिया । उन परमभक्त और परमदानी की पूजा इसीलिये अन्नकूट को सन्ध्या समय होती है ।

भगवान ने छल से बलि को बाँधा था, अतः छल जिसका दूसरा नाम द्यूत भी है इस दिन किया गया । यह इस बात का संकेत मात्र है कि यदि धर्म और राष्ट्र पर संकट हो और शत्रु बलपूर्वक न जीता जा सके तो "द्यूतं चापि समाचरेत्" छल से भी उसे हरावे । यह कुछ जुआ खेलने की आज्ञा नहीं है । कुछ विद्वानों का मत है कि इस दिन अपनी पत्नी के साथ 'सार फांसे' द्वारा जुआ खेलकर उसके परिणाम से वर्षभर के आय व्यय का शकुन निश्चय करना चाहिये । यदि ऐसा भी मान लें तो भी यह केवल शकुनमात्र है । जुआ खेलना न तो इससे सिद्ध होता और न ऐसे पापकर्म की शास्त्र आज्ञा दे सकता । जुआ तो सदा पाप है और भूलकर भी उसके फेर में नहीं पड़ना चाहिये । यह जुआ खेलने का नहीं—बलि के महान् दान को स्मरण करने का पर्व है ।

१४—यम द्वितीया

कार्तिक शुक्ल द्वितीया को यम द्वितीया, भ्रातृ द्वितीया या भैयाद्दोज कहा जाता है। जिस दिन दोपहर या अपराह्न तक द्वितीया हो उस दिन पर्व मनाया जाता है। इस दिन के मुख्य कार्य हैं भाई का वहिन के घर भोजन करके उसका वस्त्राभूषण द्वारा सत्कार करना। यमुनाजी में स्नान करना और सूर्य तथा यमराज की पूजा करना।

भगवान सूर्यनारायण की छाया नामक पत्नी से यमराज और यमुनाजी की उत्पत्ति हुई है। दोनों सगे भाई वहिन हैं। कहते हैं कि यमुनाजी की उत्कट इच्छा थी कि उनके भाई यमराजजी एक दिन उनके घर पर भोजन करें। उन्होंने कई वार आग्रहपूर्वक निमन्त्रण भी दिया; परन्तु कार्याधिक्य के कारण यमराज नहीं आ सके। अन्त में यमुना के वारवार आग्रह करने पर उन्हें एक दिन समय निकालने के लिये वाध्य होना पड़ा।

जिस दिन यमराज समय निकालकर यमुना के घर निमन्त्रण स्वीकार करने पहुँचे, उसी दिन कार्तिक शुक्ल द्वितीया थी। वहिन के घर जाते समय यमराज ने नर्क के जीवों को छोड़ दिया था। भाई को आया देखकर यमुनाजी बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने यमराज को स्नान कराकर सुन्दर सुन्दर भोजन कराया। भोजनोपरान्त यमराज ने यमुना जी से वरदान माँगने को कहा। यमुना बोलीं "आप इसी दिन प्रतिवर्ष मेरे घर भोजन किया करें। जो इस दिन अपनी वहिन के घर भोजन करके उसे वस्त्राभूषण से संतुष्ट करे उसे आपका भय न हो और जो आज मुझमें स्नान करे उसे भी तुम्हारा भय न हो।'

यमराज एवमस्तु कहकर अपने लोक को चले गये। तभी से यह पर्व मनाया जाता है।

इस दिन सम्भव हो तो तेल लगाकर यमुना में स्नान करे। यमुना न मिलें तो कहीं भी स्नान करके भाई और बहिन साथ साथ विधिपूर्वक अक्षत का ढेर लगाकर उसपर यमराज का पूजन करें। यमदूतों और चित्रगुप्त का पूजन भी करना चाहिये। यमुना जी समीप हों तो स्नान करके उनका भी पूजन करे। चित्रगुप्त का पूजन कलम और दावात रखकर उसकी पूजा के साथ करना चाहिये। यदि बहिन समीप न हो तो अकेले भी यह सब पूजन प्रभृति कर्म कर लेना चाहिये।

पूजनोपरान्त भाई को बहिन के यहाँ भोजन करना चाहिये। विशेषतः चावल खिलाने का विधान है। भोजन करने मात्र से कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। भोजन करके बहिन को वस्त्र, आभूषण प्रभृति उसकी अभीष्ट वस्तुयें देकर उसे सन्तुष्ट करना चाहिये। विशेषतः छोटी बहिन के घर भोजन करने की विधि है। छोटी न हो तो बड़ी बहिन के घर भोजन करे। बड़ी सगी बहिन न हो तो सौतेली माता की लड़की के यहाँ, वह भी न हो तो चाचा ताऊ आदि की लड़की के यहाँ, वे भी न हो तो मौसी या मामा की लड़की के यहाँ, यह भी न हो तो किसी भी सम्बन्ध से बहिन लगनेवाली के यहाँ, ऐसा भी कोई न हो तो किसी मानी हुई (धर्म बहिन) के यहाँ और ऐसा भी न हो सके तो नदी, गौ प्रभृति किसी स्त्री शब्दवाची पदार्थ के समीप भोजन करके उसकी यथासम्भव सेवा या सहायता करना चाहिये।

हिन्दू धर्म में बेचारी कन्या पैतृक सम्पत्ति में कोई भाग नहीं पाती। वह अपने माता पिता से दूर दूसरे घर में रहती है। एक ही गोद में खेले अपने भाई से उसका स्नेह स्वाभाविक है। उसमें यह इच्छा होनी ही चाहिये कि उसे अपने भाई को भोजन कराने का अवसर मिले। पिता तो पुत्री के घर भोजन कर नहीं सकता। अतः भाई को

वर्ष में एक दिन उसका ध्यान आना ही चाहिये। यह भी भाई को पता लग जायगा कि उसकी वहिन की आर्थिक स्थिति कैसी है। इस दिन वहिन भाई से कुछ सहायता भी पा जाती है।

जीव की वहिन है बुद्धि। कम से कम एक बार तो जीव बुद्धि का वास्तविक उपहार वैराग्य स्वीकार करे और अपनी आसक्ति प्रभृति सब उसे दे दे। वस्तुतः ये राग, मोह प्रभृति कल्पनामात्र हैं और ये बुद्धि को शोभित करते हैं। जीव में तो यह उसके बन्धन के कारण हो जाते हैं। अतः इन्हें बुद्धि को सौंपकर, उसका उपहार वैराग्य लेकर और यमुना स्वरूप सात्विकता में स्नान करके—पूर्ण सात्विक होकर जीव यमराज से निर्भय हो जाता है। वह काल के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

वर्ष भर में यह पर्व एक दिन आता है। एक ओर वह हमें अपनी दूर पड़ी वहिन का स्मरण कराता है। अपनों से स्नेह सम्बन्ध बनाये रखने और उनकी सहायता करने की सूचना देता है। दूसरी ओर यमराज—मृत्यु का भय सदा सिर पर है, यह बतलाकर उस महान भय से परित्राण पाने के मार्ग की ओर संकेत भी करता है। कितना अच्छा हो यदि हम इन सूचनाओं को समझें और पालन करें।

———

२५—गोपाष्टमी

बड़े खेद का विषय है कि गोप्राण हिन्दू जाति और कृषिप्रधान भारतवर्ष में अब यह गौओं से सम्बन्ध रखनेवाला पर्व कहीं कहीं ही मनाया जाता है। इस पर जितना ध्यान देना आवश्यक था, उतना ध्यान नहीं दिया जाता। गौरक्षक सभा समितियाँ भी इस पर्व को महत्ता देने के लिये पर्याप्त सचेष्ट नहीं दिखलाई पड़तीं।

भारत में इस समय गोधन का दिनों दिन ह्रास हो रहा है। देश की प्राणस्वरूप गौसम्पत्ति बराबर क्षीण होती जा रही है। यदि यही दशा रही तो देश के लिये बड़े अमंगल का सामना करना अनिवार्य हो जायगा। जो देश गोभक्षी हैं, वहाँ भी गौपाल और गौओं की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। गोसेवा में हम उनकी बराबरी कर नहीं सकते। आये दिन गायों की उन्नति के उनके यहाँ नये नये उपाय सोचे जाते हैं। अधिक से अधिक सुख देकर गाय को प्रसन्न करके वे दूध लेते हैं। हमारी भाँति भूखों मार कर और पीट कर नहीं।

आज देश में शुद्ध दूध मिलना कठिन हो गया है। गाय का घी हवन के लिये ढूँढ़ने पर बड़ी कठिनता और परिश्रम से मिलता है। जिस पदार्थ से बच्चों और युवकों का पोषण होता, जो हमें शक्ति देता, उसीका इतना अभाव देश पर क्यों न अपना दुष्फल प्रकट करे। दूध और घी की दुर्लभता ने उन्हें विकृत कर दिया। पानी और चर्बी उनके नाम पर बिकने लगी।

गोवध की देश में कोई सीमा नहीं। गोरी फौजों के लिये सहस्रों की संख्या में नित्य गाय और बछड़े कटते हैं। मुसलमान तो केवल

बदनाम हैं। उनके लिये पूरे देश में वर्षभर में उतनी गायें नहीं मरतीं जितने गोरे एक दिन में पेट में पहुँचा देते हैं। जो थोड़ी गायें हैं भी उनकी नस्ल खराब हो गई है। वे छोटी होती जा रही हैं। बकरियों की भाँति पाव आधसेर दूध देनेवाली गायों की भरमार है। दो सेर दूध एकबार में देनेवाली गाय यहाँ बहुत अच्छी मानी जाती हैं। जब कि विदेशों में साधारणतया आठ सेर दूध गाय एकबार में देती हैं। नस्ल की खराबी से गायों का स्थान भैंसों ने ले लिया। लोग दूध के लोभ से गाय के बदले भैंस पालने लगे और गौपूजा लुप्त हो गई।

गोरक्षा के लिये दो तीन बातें अवश्य हैं। पहिली तो यह कि गायों की नस्ल सुधारी जावे। इसके लिये आवश्यक है कि केवल अच्छी नस्ल के सांड़ छूटें। ऐसे वैसे साँड़ छोड़ना सर्वथा बन्द हो जाय। दूसरी बात यह कि फौजों को गोमांस देने का तीव्र विरोध करके उसे बन्द करा दिया जावे। तीसरी बात यह है कि वृद्धा और वन्ध्या गौयें बेची न जावें। वे या तो घर रहें या गौशाला में। केवल ऐसी गौशालाओं को आर्थिक सहायता मिले जो सिर्फ वृद्धा एवं वन्ध्या गौयें रखते हों। जो दूध देनेवाली गायें रखें, उन्हें दूध से अपना व्यय चलाने को छोड़ देना चाहिये। उन्हें बिल्कुल आर्थिक सहायता न दी जावे।

जब गायों की नस्ल अच्छी होगी तो उनका वध स्वतः बन्द हो जायगा। आठ दस सेर दूध देनेवाली गाय को मारना किसीके लिये सस्ता नहीं पड़ेगा। कसाई को तब दूध बेचने में लाभ रहेगा। धर्माग्रह मात्र से भारत में बहुत कम गोवध होता है।

गोपाष्टमी गौपूजा का पर्व है। भगवान श्रीकृष्ण पहिले छोटेपन में बछड़े चराया करते थे। कार्तिक शुक्ल अष्टमी के दिन उन्होंने गायों को चराना प्रारम्भ किया और गोपाल बने। तभी से यह पर्व मनाया जाता है। इस दिन प्रातः स्नान करके गौ को स्नान करावे। अक्षत,

पुष्प, माला, धूप, दीप, आरती प्रभृति से विधिपूर्वक उसकी पूजा करे। अन्त में उसे सुन्दर घास और अन्न खिलाकर उसकी प्रदक्षिणा करे। तदुपरान्त गौ को चरने के लिये ले जाय और यदि स्वयं चराने न जा सके तो थोड़ी दूर उसके पीछे जावे।

गौपूजा करके कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। वस्तुतः तो इस दिन से गौसेवा का व्रत लेने की यह पर्व सूचना देता है। हमें गौपालन और गोरक्षा के समस्त उपायों पर इस दिन विचार करना चाहिये। पिछले एक वर्ष में इन कार्यों में जो त्रुटियाँ रह गई हों उन्हें सुधारना चाहिये। नये वर्ष के लिये नवीन कार्य-क्रम बनाकर उसे पूर्ण करने में लग जाना चाहिये।

धर्मशास्त्र के अनुसार गाय समस्त देवताओं की मूर्ति है। गौपूजा में समस्त देवताओं की पूजा आ जाती है। हमें इस पर्व को महत्वशाली बनाना चाहिये। इस दिन से गोरक्षा का व्रत लेकर उसमें जुट जाना चाहिये। वह हिन्दू अभागा है जिसके घर एक गाय भी नहीं पाली जाती। कम से कम इस त्रुटि को तो आज के दिन दूर कर ही देना चाहिये।

———

२६-देवोत्थानी एकादशी

हिन्दू धर्मशास्त्र जितना विशाल है, उतना ही रहस्यपूर्ण भी। नित्य कर्तव्य और पर्वों के नाम पर जो विधान किये गये हैं, उनमें सृष्टि का अपार रहस्य और मानव-समाज की उन्नति के गम्भीर तथ्य छिपे हुए हैं। हम उन्हें जानते नहीं और न जानने का प्रयत्न करते। यही बहुत है कि प्रथारूप में हमारे द्वारा अनजान में ही उनका पोषण हो रहा है। इस प्रकार भी यदि उनका अस्तित्व बना रहे तो अवश्य किसी दिन संसार उन्हें समझेगा।

आषाढ़ में देवशयनी एकादशी आती है और कार्तिक में देवोत्थानी। कहा जाता है कि भगवान विष्णु इस एकादशी को जागृत होते हैं। वे चार महीने शेषशय्या पर शयन करने के पश्चात् आज उठते हैं। आज उनकी धूमधाम से पूजा करने का पर्व है। आइये इस देवोत्थान पर हम आज कुछ बुद्धि दौड़ावें।

भगवान विष्णु स्थिति के अधीश्वर हैं। विश्व का उनके द्वारा पालन होता है। धर्मशास्त्र कहता है कि पालिका शक्ति चार महीने सोने के पश्चात् आज जागृत होती है। वर्षा के चार महीनों में एकत्र किया कोष ही काम आता है। समस्त प्राणी इन महीनों में उपार्जन से वंचित रहते हैं। सृष्टि में प्रकृति जो कुछ उत्पन्न भी करती है, वह अपरिपक्व रहता है। सब उद्योग व्यवसाय शान्तप्राय रहते हैं। औषधियाँ अपनी पूर्ण उपयोगी अवस्था में नहीं पहुँची होतीं।

आज वह पालिका शक्ति जागृत होती है। उपार्जन का अवरुद्ध मार्ग उन्मुक्त हो जाता है। ऋतु उद्योग व्यवसाय के अनुकूल हो जाती है। प्रकृति के उपहार अन्न और औषधिवर्ग शीघ्रता से पुष्ट और पक्व

होने लगते हैं। जीवमात्र अपने पोषण के लिये सामग्री पाते हैं। समष्टि में चार महीने तमोगुण प्रधान रहता है। विष्णुवाची सूर्य बादलों से आच्छादित रहता है। आलस्य का राज्य रहता है। आज से सत्वगुण की प्रधानता होती है। संसार को जीवन देनेवाला सूर्य अनावरित हो जाता है।

व्यष्टि में हम देवोत्थान और देवशयन का और स्पष्टता से अनुभव कर सकते हैं। वर्षा में जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। शरद के अन्त में वह पुनः जागृत होती है। शीत ऋतु में अग्नि प्रबल रहती है और वह अच्छी प्रकार भोजन को पचाकर शरीर का पोषण करती है। वर्षा की नमी के कारण जो शरीर में अनेक प्रकार की विषमतायें और रोग हो जाते हैं, शरद में शरीर उनका शमन करता है।

कार्तिक शुक्ल एकादशी देवोत्थानी एकादशी कहलाती है, यह प्रायः सभी लोग जानते हैं। भारत के बहुत से भागों में आज के दिन से गन्ना चूसना प्रारम्भ किया जाता है। आज से पूर्व गन्ना चूसना वहाँ अच्छा नहीं मानते। वस्तुतः यह प्रथा बहुत अच्छी और अनुकरणीय है। वर्षा में गन्ना कच्चा होता है। उसका रस मीठा न होकर फीका और कुछ खटाई लिये होता है। वह उदर में जाकर विकृति उत्पन्न करता है। दूसरे वर्षा में वायु अत्यधिक नम रहती है। ऐसे समय में पेट में जलीय तत्व ठीक नहीं पचते। गन्ने के रस में जल अधिक होता है। वर्षा में उसके सेवन से अधिक लघुशंका होगी और मूत्राशय के दूषित हो जाने का भय भी रहेगा।

शरद में गन्ना पक जाता है। अग्नि के जागृत होनेपर वह शरीर को लाभ पहुँचाता है। उसके हानिकारक तत्व अबतक दूर हो चुके होते हैं। प्रातःकाल कृषक गन्ने के खेत में हवन करके तब गन्ना काटते हैं। वे उसमें से गुरु, पुरोहित, ब्राह्मण प्रभृति का भाग पृथक् निकाल कर शुभ मुहूर्त में प्रथम गन्ना चूसते हैं। आस पास

जिस व्यक्ति के यहाँ गन्ना नहीं होता, उसके घर उसके पड़ोसी इस दिन गन्ना पहुँचा देते हैं।

इस पर्व को सबसे अधिक महत्व दक्षिण के वारकरी सम्प्रदाय में प्राप्त है। पंढरपुर में इस दिन बहुत बड़ा मेला लगता है। वारकरी सम्प्रदाय का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कितनी भी दूर रहता हो, इस दिन श्री विट्ठलनाथ जी के दर्शन करने अवश्य आता है। पाण्डुरंगजी के दरबार में लाखों की भीड़ होती है। इस दिन दर्शन पाना कुछ सरल नहीं है। सात सात दिन लगातार अहर्निश रास्ते पर लोग दर्शनार्थ खड़े रहते हैं और इतने पर भी भीड़ की अधिकता के कारण कई को निराश लौटना पड़ता है।

दिन में हो सके तो व्रत करके और नहीं तो फलाहार पर रह कर भगवान विष्णु की पूजा की जाती है। पूरी रात्रि जागरण करते हुए हरिनाम कीर्तन और भक्तिपूर्ण पद तथा कथायें होती रहती हैं। प्रातः आरती हो जाने के पश्चात् उत्सव समाप्त होता है। जो रात्रि जागरण करने में सर्वथा असमर्थ हों, उन्हें सन्ध्या को भगवान की पूजा करनी चाहिये और दूसरे दिन मूर्ति का उद्वासन।

२७-भैरवाष्टमी
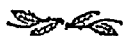
भगवान शंकर के प्रधान गणों में श्री कालभैरवजी हैं। पुराणों के अनुसार वे शंकरजी के ही दूसरे रूप हैं। उनका वाहन कुत्ता है और काशी के वे नगररक्षक माने जाते हैं। आद्य शंकराचार्यजी ने काशी में एक बार अवसर पड़ने पर उनकी बड़े प्रेम से प्रार्थना की थी। वह भैरव स्तुति बहुत प्रधान है।

काशी में मरनेवाले की मुक्ति हो जाती है ऐसा शास्त्रों का वचन है। भगवान शिव मृत्यु के समय स्वयं अपनी पुरी में जीव को तारक मन्त्र का उपदेश करके आवागमन के चक्र से मुक्त कर देते हैं। काशी में पापी-पुण्यात्मा, ज्ञानी-अज्ञानी सभी मरते हैं। सभी की मुक्ति होती है यह शास्त्र वचन है। यहाँ यह शंका होती है कि फिर भजन प्रभृति सात्विक कर्मों का काशी में कोई महत्व नहीं? यह शंका केवल इसलिये उठी कि हम 'काशीमरणान्मुक्तिः।' की पूरी व्यवस्था पर दृष्टि नहीं डालते।

काशी में जो जीव मरता है, उसके पाप कर्मों का भोग श्री भैरवजी अपने डंडे से पीटकर पूरा कर देते हैं। इसे भैरवी यातना कहते हैं। यह यातना इतनी कठोर होती है कि सहस्रों वर्षों घोर नरक में सड़ने योग्य कर्म के फल को कुछ सेकेन्ड में निपटा देती है। जो जितना बड़ा पापी होता है, उसे उतनी भयंकर यातना मिलती है। इस यातना को भोगने के पश्चात् शुद्ध होकर वह कैलाश में निवास करता है।

भैरव शब्द का अर्थ पुराणों में पोषक और भयावह दोनों किया है। जो विश्व का भरण-पोषण करने की शक्ति रखता हो वह भैरव कहा जाता है और जो दुष्टों के लिये महान् भयंकर हो उसे भी भैरव कहते हैं।

भैरवजी से काल भी भयभीत रहता है अतः उन्हें कालभैरव कहते हैं। भगवान शंकर से मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी को भैरवजी का प्रादुर्भाव हुआ है, अतएव इस पर्व को भैरवाष्टमी कहा जाता है।

भैरवजी के उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है कि किसी कल्प में ब्रह्मा और विष्णु में यह विवाद चला कि मैं ही विश्व का कारण और परमतत्व हूँ। मुझसे अन्य कोई महान् नहीं। महर्षियों ने वेद शास्त्रों के द्वारा निश्चय किया कि वस्तुतः एक अव्यक्त परमतत्व है और ब्रह्मा एवं विष्णु उसकी विभूति। भगवान् विष्णु ने यह बात स्वीकार कर ली परन्तु ब्रह्मा ने नहीं की। इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा परमतत्व की अवहेलना होने पर भगवान् शंकर भैरवरूप से प्रकट हुए और उन्होंने ब्रह्मा के गर्व को चूर्ण कर दिया।

जो लोग सृष्टि में विशेष शक्ति, बुद्धि या धन प्रभृति पाकर मदमत्त हो जाते हैं और अपने को ही विश्व में कर्ता धर्ता समर्थ मानकर अशान्ति फैलाते हैं, दीन एवं दुर्बलों पर रोब जमाकर शास्त्रीय व्यवस्थाओं की उपेक्षा करते हैं, बड़ों का अनादर और अपमान करते हैं, ऐसे मदान्धों के मद को चूर्ण करने के लिये परमात्मा की एक भयंकर शक्ति है और वह उन घमण्डियों के लिये भैरव—भय देनेवाली है। वह शक्ति सज्जनों का पालन करती है। काल से उनकी रक्षा करती है।

जो शान्त हैं, तितिक्षु हैं, धार्मिक हैं, शास्त्रों की मर्यादाओं को माननेवाले हैं और बड़ों के आदेशों में श्रद्धा रखते हैं, उनके लिये भगवान कालभैरव हैं। काल से वे उनकी रक्षा करते हैं। दूसरी बात यह कि उनकी उग्र मूर्ति यह शिक्षा देती है कि जो भगवान के भक्त हैं, उन्हें काल से डरने की आवश्यकता नहीं। भैरव श्मशान के देवता हैं—उसी श्मशान के जिसकी गोद में एक दिन सभीको जाना है। जो पहिले से भैरव की पूजा करते हैं—उनकी उपरोक्त शिक्षा पर चलते हैं, उनके

लिये श्मशान अपने आराध्य का निवास है। पर जो मदान्ध हैं, मृत्यु उनके लिये अत्यन्त भयंकर है।

भैरवाष्टमी उपरोक्त सभी बातों का स्मरण कराती है। भारत के बहुत कम स्थानों में भैरवाष्टमी मनाई जाती है। काशी में प्रायः यह पर्व विशेषता से मनाया जाता है। दोपहर को भैरवजी का प्राकट्य हुआ था, अतएव जिस दिन दोपहर तक अष्टमी हो, वही पर्व माना जाता है। इस अष्टमी को कालाष्टमी भी कहा जाता है। इस दिन दिनभर व्रत रहना चाहिये। दिन में कालभैरव और शंकरजी की समारोह से पूजा करनी चाहिये। रात्रि को यदि भैरव का मन्दिर आसपास हो तो वहाँ और नहीं शिवालय में रात्रि जागरण करते हुए कथा, कीर्तन, पूजा, पाठ, जप प्रभृति करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष वर्षभर के कष्टों से छुटकारा पा जाता है,यह पुराणों में कहा गया है।

आध्यात्मिक जीवन की सबसे बड़ी शिक्षा है 'मृत्यु का स्मरण रखो!' प्रत्येक मनुष्य के शिर पर प्रत्येक समय काल की नंगी तलवार झूल रही है। पता नहीं किस क्षण गिरे और समाप्त कर दे। मनुष्य इतने महान् भय को प्रमादवश भूलकर अनेक पापों में रत रहता है। प्रभु का स्मरण उसे नहीं होता। यदि वह उस भय को स्मरण रखे तो सहज ही उससे सर्वेश का स्मरण होगा। परिणामतः वह उस काल से निर्भय हो जावेगा। भैरवाष्टमी संसार को यही संदेश देती है—काल सिर पर है यह स्मरण रखो और तब तुम कालभैरव की शरण होकर निर्भय हो जाओगे।

———

१८-दत्त-जयन्ती
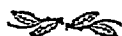
पूर्वकाल में आज की भाँति केवल सन्तान उत्पन्न करना कोई पसन्द नहीं करता था। वे महर्षि सुयोग्य सन्तान के अभिलाषी होते थे और इसके लिये घोरश्रम भी उन्हें स्वीकार था। कामवासना कोई वस्तु नहीं थी। सन्तानोत्पादन के लिये ही उसे स्वीकार किया जाता था। इसी प्रकार महर्षि अत्रि सन्तान के लिये तपस्या कर रहे थे। वे बिना ईश्वर के स्वरूप की कोई कल्पना किये इस भाव से आराधना में लगे थे कि जो भी कोई जगत् का अधीश्वर हो वह प्रत्यक्ष होकर हमें दर्शन दे।

तपस्या विफल तो होती नहीं, जगत् के अधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों एक साथ महर्षि के सम्मुख प्रकट हुए। महर्षि ने उनका अभिवादन किया, स्तुति की और वरदान माँगने को कहने पर उनके समान पुत्र पाने की प्रार्थना की। त्रिदेवों की तुलना का दूसरा कौन होता? वे स्वयं ही महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया में अंश रूप से प्रकट हुए। विष्णु के अंश से दत्तात्रय, शिव के अंश से महर्षि दुर्वासा और ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा का आविर्भाव हुआ।

दत्तात्रयजी योग के आचार्य हैं, कई साधन मार्गों के प्रवर्तक हैं। उन्होंने पृथ्वी आदि चौबीस गुरु बनाये और अपनी प्रतिभा से उनकी चौबीस शिक्षाओं को ग्रहण किया। प्रह्लाद को वे अवधूत वेश में मिले थे और उन्हें परमहंस धर्म का उपदेश किया था। वे अमर हैं और समय समय पर अधिकारी पुरुषों ने उनके दर्शन भी किये हैं।

दत्तात्रयजी का प्राकट्य मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा को हुआ था। इस दिन उनकी जयन्ती मनाई जाती है। उनका पूजन होता है। यह पर्व दक्षिण में बड़े समारोह से मनाया जाता है। गिरिनार पर्वत

दत्तात्रयजी की तपोभूमि रही है । वहाँ उनका विशाल मन्दिर है और सहस्रों यात्री उनके दर्शन के लिये प्रतिवर्ष जाते हैं । इस पर्व पर वहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है ।

प्रकृति शिक्षाओं से पूर्ण है । अनिच्छुक और मूर्ख के लिये विद्वान् के पास भी समझाने को कुछ नहीं; परन्तु अभिलाषी विद्वान् को जगत् का कण-कण उपदेश कर रहा है । प्रत्येक वस्तु और घटना हमें कुछ न कुछ सिखलाती है । दत्तात्रयजी का जीवन बतलाता है कि गुरु के लिये मारे-मारे फिरने की कोई आवश्यकता नहीं । हमें योग्य शिष्य बनना चाहिये । फिर तो हम देखेंगे कि प्रत्येक जड़ चेतन और विश्व की प्रत्येक घटना हमें ज्ञान प्रदान करने को प्रस्तुत है । हम उससे अपार बोध प्राप्त कर सकते हैं । दत्तात्रयजी ने जो चौबीस शिक्षायें ग्रहण की थीं, वे प्रत्येक जीव के कल्याण की दात्री हैं । उनका मनन और आचरण करना चाहिये ।

१९-वसन्त पंचमी

माघ शुक्ल पंचमी को वसन्त पंचमी कहते हैं । इसका दूसरा नाम है श्री पंचमी । वसन्तऋतु के महीने होते हैं चैत्र और वैशाख, फिर यह लगभग डेढ़ मास पूर्व वसन्त पंचमी क्यों ? यह प्रश्न स्वभावतः उठता है । बात यह है कि महीने चान्द्र गणना से और ऋतुयें सौर गणना से होती हैं । यदि दोनों का समन्वय करें तो वास्तव में फाल्गुन और चैत्र वसन्त ऋतु के हैं । बौधायन सूत्रों से कुछ ऐसा ही अर्थ निकलता है । फाल्गुन से दस रोज पूर्व वसन्त पंचमी होनेका कारण यह है कि यह काल सूर्य के उत्तरायण होने से पूर्व

देवताओं का ब्राह्म मुहूर्त होता है। इसकी पंचमी पूर्णातिथि होने से पर्व मानी गई।

वसन्त पंचमी उस दिन मनाई जाती है जिस दिन सूर्योदय के समय पंचमी होती हो। इस तिथि का नाम श्री पंचमी भी है। इस दिन श्री लक्ष्मीजी का समुद्र से प्रादुर्भाव हुआ था। पुराने समय में इस पर्व का बहुत महत्व था। इस दिन बड़ी धूम धाम से मदनोत्सव मनाया जाता था। पहिले इस दिन कामदेव और रति की मूर्ति बनाकर पूजा होती थी। आजकल माता लक्ष्मी के साथ भगवान विष्णु की पूजा प्रचलित है। पुराणों में भी इस दिन भगवान की पूजा का विधान है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के पुत्र काम के अवतार हैं और रति उनकी साक्षात् पत्नी हैं। इस दिन भगवान के साथ प्रद्युम्न और रति का पूजन भी होना चाहिये।

धूप, दीप, नैवेद्य के अतिरिक्त इस पर्व की पूजा में गुलाल का विशेष स्थान है। होली के पूर्व पहिले इस दिन भगवान को गुलाल चढ़ायी जाती है। नवीन अन्न विशेष कर हरे जौ को भूनकर इस दिन नैवेद्य के उपयोग में लाते और प्रसाद ग्रहण करते हैं।

पतझड़ हो चुकने के पश्चात् प्रकृति नवीन किसलय सज्जित और पुष्पों से आभूषित होती है, दिशायें आम्र मंजरी की सुगन्धि से सुरभित एवं कोकिल की काकली से मुखरित होती हैं, और क्या चाहिये हृदय में उमंग से संचार करने के लिये। इस समय पुष्पधन्वा की पूजा और श्री के साथ श्रीपति के चरणों में गुलाल की अंजलि "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि" की पूर्ण शिक्षा है। शास्त्र कहता है कि तुम प्रकृति से पृथक् नहीं हो। उसके साथ तुम भी सजो और मदनोत्सव मनाओ, परन्तु ऐसे समय भी श्रीपति को मत भूलो। मानव को उत्साह के समय नियन्त्रित रखा जा सके तो फिर सब मर्यादा रक्षित रहे। यह शास्त्रीय विधि इसका पूर्ण विवेचन है।

वसन्त पंचमी के दो दिन पश्चात् माघ शुक्ल सप्तमी को अचला सप्तमी कहते हैं। जिस दिन सप्तमी अरुणोदयव्यापिनी हो उसी दिन पर्व मनाना चाहिये। इस तिथि का महत्व सूर्यग्रहण के समान बतलाया गया है। इस दिन प्रयाग में गंगास्नान करने का विशेष महत्व है। अचला सप्तमी को अरुणोदय के समय स्नान करके दान पुण्य करना तथा अपने पितरों का अर्घ्य देना चाहिये।

पुराणों में इसके सम्बन्ध में कई कथायें हैं। एक तो यह कहा गया है कि भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने धर्मराज युधिष्ठिर को इस दिन व्रत करने को कहा था। एक कथा ऐसी भी है कि महर्षि वशिष्ठ के उपदेश से इन्दुमती वेश्या ने इसी तिथि में व्रत किया और फलतः उसे स्वर्ग में एक उच्च स्थान प्राप्त हुआ। विशेषकर स्त्रियों के लिये इस दिन व्रत का विधान किया गया है और इस व्रत के करने से उन्हें सौभाग्य एवं सन्तान प्राप्ति बतलायी गई है।

मुझे इस सप्तमी व्रत के सम्बन्ध में कोई विशेष महत्तापूर्ण कथा की उपलब्धि नहीं हुई। यह व्रत कबसे प्रारम्भ हुआ, यह बात मेरे लिये अज्ञात है। पर कारण चाहे जो भी हो, वसन्त पंचमी के ठीक दो दिन पश्चात् पड़ने से यह अपनी विशेषता स्पष्ट बतला रही है। इसका सबसे बड़ा प्रयोजन अत्यन्त स्पष्ट है कि मदनोत्सव की उमंग कहीं मर्यादा से बाहर न हो उठे इसलिये दो दिन बाद स्नान, जप, दान, तर्पण प्रभृति का विधान है। नवीन अन्न शरीर में प्रथम कुछ विकृति करता ही है, उसके लिये भी दिन भर का उपवास एक अचूक चिकित्सा का काम करेगा।

सप्तमी का नाम भी कुछ बतलाता है। वह अचला है। सभी चाहते हैं कि दुःखकी अपेक्षा सुख में धैर्य रखना अधिक कठिन है। वसन्त की उमंग में चंचल मत हो! अपनी कुल मर्यादा और शास्त्र रीति को भूलो मत! चपलता और औद्धत्य को छोड़कर अपने शुद्ध सत्य सनातन पथ पर अचल रहो! अचला का यह सन्देश है, जिसका उस दिन व्रत में हमें मनन करना चाहिये। आप सबने लक्ष्मी को चला सुना है, वस्तुतः वह चला है भी। किसीके पास वह स्थिर नहीं रहती। पर वह सब कहीं चला ही हो ऐसी बात नहीं। श्रीपति के श्रीचरणों में वह अचला है। श्री पंचमी को श्री की पूजा करने के पश्चात् उसीके पीछे पड़ने से पूर्ण उसे अचला के रूप में प्राप्त कीजिये। इस रूप में वह केवल श्रीश के चरण-कमलों में ही मिल सकती है।

३१—भीष्माष्टमी

कौन ऐसा हिन्दू है जो पितामह भीष्म का नाम न सुन चुका हो। महाभारत के युद्ध में उन्होंने प्रतिज्ञा की "आज श्रीकृष्ण से हथियार उठवाकर छोड़ूँगा।" उस बाल ब्रह्मचारी के लिये केशव को अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर चक्र उठाना पड़ा। यह भीष्म का ही साहस था कि उन्होंने स्वयं अपनी मृत्यु बताकर शर-शय्या प्राप्त की और उस पर पड़े पड़े पूरा युद्ध देखते रहे। उस गंगासुत से युद्ध करने आकर विश्व-विजयी परशुरामजी ने भी मुँह की खाई थी। आपको पता है कि उनका नाम भीष्म क्यों पड़ा? वही बताने चला हूँ।

आठों वसुओं को मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप था। वे गंगा के गर्भ से आने वाले थे और तुरन्त त्राण पाना चाहते थे। महाराज शान्तनु ने इस शर्त पर गंगा से ब्याह किया कि वे उनकी कोई भी इच्छा पूर्ण होने देंगे। एक एक करके सात पुत्र हुए और उन्हें गंगा ने जल में प्रवाहित कर दिया। पुत्र-स्नेह से आठवें पुत्र को नरेश ने रोका और गंगा जल गईं। आठवें वसु को शान्तनु के पुत्र-रूप में रहना पड़ा। गंगा पुत्र को ले गईं थीं और शिक्षित करके नरेश को दे गईं। इस पुत्र का नाम देवव्रत पड़ा।

संयोग से शान्तनु ने एक दिन योजनगन्धा जिसका पहिला नाम मत्स्यगन्धा था और जो पराशर की कृपा से योजनगन्धा हो गई थी, उस व्यास की माता सत्यवती को देखा। वे उस पर मुग्ध हो गये। वह थी केवटराज की पोषित पुत्री। निषादराज से उसकी याचना करने पर उन्होंने चाहा कि उसकी लड़की का पुत्र ही भावी नरेश हो। राजा देवव्रत के साथ यह अन्याय न कर सके, निराश लौट आये।

शान्तनु उदास रहने लगे। उनके अन्तर में प्रेम की अग्नि लगी थी। इस उदासी के कारण को खोज करके देवव्रत ने जान लिया। वे निषाद-राज के यहाँ गये और उन्होंने कहा "मैं राज्याधीश नहीं बनूंगा।" निषादराज की शंका हुई "आप न सही, पर आपके पुत्र तो राजा होंगे।" उस अटल पितृभक्त का उत्तर था "मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आजन्म अविवाहित रहूँगा।" आकाशवाणी हुई "धन्य देवव्रत ! धन्य !! ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा तुम्हीं कर सकते हो।" तभी से उनका नाम भीष्म पड़ा। सत्यवती की शादी उनके पिता से हो गई। भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया।

माघ शुक्ल अष्टमी को भीष्म ने उपरोक्त प्रतिज्ञा की थी। अतः इस तिथि को भीष्माष्टमी कहते हैं। इस दिन भीष्म चरित्र सुनना चाहिये। पितामह भीष्म, गंगाजी और शान्तनु की मूर्ति बनाकर

पूजन करना चाहिये। यह पर्व पितृभक्ति का आदेश करता है और ब्रह्मचर्य की महान शक्ति को भी सूचित करता है, जिसके बल पर भीष्म ने परशुराम को हराया और मृत्यु को अपने वश में कर लिया था।

—

३१—महाशिवरात्रि

कहा तो यह जाता है कि भगवान शंकर सृष्टि की आदि में फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को ब्रह्मा से रुद्ररूप में प्रकट हुए थे और तभी से इस तिथि को महाशिवरात्रि कहा जाने लगा। रात्रि को महत्ता इसलिये मिली कि रुद्र का प्राकट्य मध्य रात्रि में हुआ था। इसे कालरात्रि कहा जाता है। प्रलय के समय इसी दिन प्रदोष काल में प्रलयंकर अपना त्रिशूल उठाकर ताण्डव प्रारम्भ करते हैं और समस्त ब्रह्माण्ड को तृतीय नेत्र की ज्वाला में भस्म कर डालते हैं।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त एक सुन्दर कथा इस पर्व की पुराणों में और मिलती है। एक शिकारी भील बड़े प्रातः अपने बाण और धनुष लेकर वन में शिकार के लिये गया। संयोगवश दिन भर उसे कोई शिकार न मिला। रात्रि को एक जलाशय के किनारे बेल के पेड़ पर चढ़ कर वह इस आशा से बैठा कि रात्रि में जंगली जीव यहाँ पानी पीने आवेंगे। रात्रि भर शिकार की आशा से वह जागता रहा। पेड़ के नीचे शंकरजी की एक पिण्डी थी। भील के शरीर के घर्षण से टूटकर

बहुत से बिल्वपत्र उस मूर्ति पर गिरे और कुछ ओस की बूँदें भी। शिव तो आशुतोष ठहरे ! भाग्य से उस दिन महाशिवरात्रि थी। अनजान में भील से व्रत, रात्रिजागरण और शिवपूजन भी हो गया था। भोलानाथ सन्तुष्ट हो गये और उसे कैलाश ले गये।

शिवरात्रि का यह व्रत और पूजन ब्राह्मण से चाण्डाल पर्यन्त सभी वर्ण और आश्रम के लोग कर सकते हैं। इसमें शैव, शाक्त या वैष्णव प्रभृति किसी सम्प्रदाय का भेद नहीं। सभी सम्प्रदायों के लोगों को यह व्रत करना चाहिये। भगवान शंकर यदि शैवों के इष्ट हैं तो वैष्णवों के परमाचार्य भी हैं। जिस वर्ष मंगल या रविवार को शिवरात्रि पड़े, उस वर्ष उसका विशेष महत्व होता है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को यह व्रत होता है। यदि चतुर्दशी में ही व्रत और चतुर्दशी में ही पारण मिलता हो तो अत्यन्त महत्वपूर्ण योग समझना चाहिये। पर्व उस दिन मनाया जाता है जिस दिन चतुर्दशी आधीरात में मिलती हो। यदि चतुर्दशी आधीरात में न मिले तो जिस दिन वह प्रदोष में मिलती हो उस दिन शिवरात्रि समझना चाहिये।

शिवरात्रि के प्रधान कार्य हैं व्रत, शिवपूजन और रात्रिजागरण। इस दिन चौबीस घण्टे शक्ति हो तो निर्जल व्रत करना चाहिये। सन्ध्या को स्नान करके, भस्म और रुद्राक्ष धारण करके भगवान शंकर का पूजन विधिपूर्वक करना चाहिये। किसी मन्दिर में या पार्थिव लिंग बनाकर पूजन होता है। सन्ध्या को, अर्ध रात्रि को, तीसरे प्रहर में और अन्त में प्रदोष के समय बार बार अभिषेक और पूजन किया जाता है। पूजन में बिल्वपत्र आवश्यक है। इस कालरात्रि में कभी भूलकर भी सोना नहीं चाहिये।

सकाम और निष्काम दोनों प्रकार से यह व्रत होता है। जो लोग किसी कामना से व्रत करते हैं, उनकी कामना आशुतोष पूर्ण करते हैं। निष्काम भक्तों को वे संसार सागर से मुक्त कर देते हैं। बिना भस्म

त्रिपुण्ड लगाये और रुद्राक्ष की माला पहिने शिवपूजन का अधिकार नहीं होता। परन्तु यह नियम अन्य देवताओं में पूर्ण निष्ठा रखने वालों (जैसे वैष्णवों) के लिये नहीं है। ऐसे लोग अपने वेश में ही शंकरजी का पूजन कर सकते हैं। जो नैष्ठिक नहीं हैं, उन्हें यह नियम पालन करना चाहिये। पवित्र और मन को संयत रखकर इस दिन प्रभु की शरण होना चाहिये।

प्रायः यह नियम है कि इष्ट का प्रत्येक सप्ताह में एक मुख्य दिन माना जाता है। महीने में एक मुख्य दिन होता है और पक्ष तथा वर्ष में एक मुख्य दिन होता है। सप्ताह से पक्ष का, पक्ष से मास का और मास से वर्ष का दिन अधिक महत्ता रखता है। सोमवार भगवान शंकर का दिन है। दोनों पक्षों की चतुर्दशी शिवरात्रियाँ हैं। अमावस्या उनका मुख्य पर्व है और वर्ष में यह महाशिवरात्रि पड़ती है।

इस दिन भगवान शंकर प्रत्येक चल और अचल लिंग में रात्रि को प्रवेश करते हैं इस दिन व्रत और रात्रिजागरण करते हुए जो कुछ जप, दान, हवन, पूजन प्रभृति जो किये जाते हैं वे अनन्त गुणित फलदायी होते हैं। पुराणों में इस व्रत का बहुत माहात्म्य है। बड़े बड़े उद्देशों से महान पुरुषों ने यह व्रत किया है। अघोर मन्त्र से शिवपूजा हो सके तो और अच्छा।

भगवान शंकर प्रलय के देवता हैं और उनकी यह शिवरात्रि कालरात्रि कही जाती है। जो काल का काल है, देवों का देव है, उस महादेव की आज उपासना करनी है। क्यों? इसलिये कि हम कालग्रसित हैं, काल के फन्दे में पड़े हैं और उससे भीत होकर त्राण चाहते हैं। इस त्राण के लिये हमें महाकाल स्वरूप की शरण लेकर उसके आदेश का पालन करना चाहिये।

भगवान शिव का आदेश क्या? वही जो वह करते हैं। योगीश्वर और कामारि का वह त्यागमय वेश क्या हमें कुछ नहीं बतलाता?

संसार की रक्षा के लिये उन्होंने गरल पान किया। दोनों पर अनुकम्पा की शिक्षा का कोई और श्रेष्ठ प्रकार हो सकता है ? मसान में प्रेत पिशाचों से घिरे, सांप लपेटे और त्रिभुवनसुन्दरी गौरी को अर्धाङ्गी बनाये क्या वह योगीश्वर साम्यस्थिति का पूर्ण आदर्श नहीं ? सिर पर गंगा और भाल में ज्वाला, भाल में सुधाकर और कंठ में गरल, वाहन बैल, और स्वामी अन्नपूर्णा का, लपेटे भस्म और भूतियों का दाता, यह सब समता मनन करने योग्य है। शिवरात्रि में व्रत करते हुए इधर भी चित्त लगाइये। भगवान् शंकर का सन्देश आत्मकल्याण का सन्देश है।

३३—होलिकोत्सव

यह उत्सव वैदिक काल से चला आता है। समय समय पर इस पर्व की इतनी महत्वपूर्ण घटनाओं की आवृत्ति होती रही है कि यह सदा नवीन बनता गया है। वैदिक काल में यह नवन्नेष्टि यज्ञ था। खेत से आधे कच्चे और आधे पके अन्न को लाकर यज्ञ में हवन करते थे और उसीका प्रसाद लेते थे। इस अन्न को संस्कृत में होला कहते हैं, अतः यह पर्व होलिका के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

हिरण्यकशिपु जब विष, सर्प प्रभृति से भक्त प्रह्लाद को न मार सका तो उसने लकड़ियों का ढेर कराकर उसमें अग्नि लगवा दी। हिरण्यकशिपु की बहिन होलिका जो वरदान के प्रभाव से अग्नि में नहीं जलती थी, प्रह्लाद को लेकर अग्नि में प्रविष्ट हुई। भक्त तो सुरक्षित रहा और भक्षिका भस्म हो गई। भक्त प्रह्लाद की स्मृति में भक्त और उस राक्षसी के शोक में असुर यह पर्व मनाने लगे।

एक ढुण्ढा नामकी राक्षसी बच्चों को बहुत तंग करती थी। एक दिन व्रज के गोप बालकों ने उसे पकड़ा और गाली देते, मारते पीटते ग्राम से बाहर ले गये। लड़कों ने उपले, पत्ते और लकड़ियों का ढेर लगाकर उसमें अग्नि लगाई और उस अग्नि में ढुण्ढा को पटक दिया। झुलस-कर ढुण्ढा जो वहाँ से भागी तो लौटने का नाम न लिया। बच्चे उस घटना की स्मृति में प्रतिवर्ष होली मनाने लगे और उसी प्रकार उपले और लकड़ियों का ढेर जलाने लगे।

भगवान शंकर ने इसी दिन कामदेव को भस्म किया था। इसी दिन केशव ने पूतना को मारा था। कुछ लोगों का मत है कि फिर इसी दिन उन्होंने शिशुपाल को भी मारा। इस युग के प्रधान हरिनाम प्रचारक श्री गौरांग महाप्रभु का प्राकट्य भी इसी पवित्र पर्व को हुआ था।

इस पर्व के दो रूप हैं—एक प्रह्लाद के पक्षपाती भक्तों का और दूसरा होलिका के नाम पर रोनेवाले राक्षसों का। भक्त और सात्विक पक्ष के लोग अग्नि में आहुति देते हैं, भगवान का गुण गाते हैं। अग्नि की तीन परिक्रमा करके वह विभूति मस्तक पर धारण करते हैं। होली भद्रा छोड़कर जलाते हैं। राक्षसी पक्ष के लोग मलिन काष्ठादि का ढेर गाँव से बाहर लगाकर किसी चाण्डाल के घर से अग्नि मँगाकर उसे जलाते हैं। गन्दे शब्द और गाली बकते हैं। वे अग्नि को उल्लङ्घन करते और पैरों से अपमानित करते हैं। इस प्रकार वे उस राक्षसी की आत्मा को प्रसन्न करते हैं। हमें दोनों रीतियों को समझ कर फिर जो पक्ष ठीक लगे वह ग्रहण करना चाहिये।

फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से पौर्णमासी तक आठ दिन होलाष्टक माना जाता है और पश्चात् चैत्र कृष्ण रंगभरी एकादशी तक रंग दिवस समझे जाते हैं। इस प्रकार उन्नीस दिन का यह पर्व माना जाता है। भारत के कई भागों में होलाष्टक के आरम्भ में एक वृक्ष की शाखा

काटकर उसमें भिन्न-भिन्न रंग के वस्त्रों के टुकड़े बाँध देते हैं । फिर प्रत्येक मनुष्य उसमें एक-एक चीर बाँधता जाता है । उस शाखा को पृथ्वी में गाड़कर उसके नीचे नाचते गाते और परस्पर एक दूसरे पर केशर, अबीर आदि डालते हैं ।

दूसरे प्रदेशों में वसन्त पंचमी या शिवरात्रि को अविवाहित लड़के सन्ध्या को ग्राम से बाहर एक अरण्ड का पेड़ गाड़ देते हैं और नित्य उस पर पत्ते, लकड़ी प्रभृति डाल आते हैं । होलिका के दिन इसमें अग्नि लगा दी जाती है और दूसरे दिन रंग खेला जाता है । लगभग यही प्रथा अधिकांश भागों में प्रचलित है ।

दिन में और प्रतिपदा को होली नहीं जलाना चाहिये । भद्रा के आरम्भ में भी नहीं जलाना चाहिये । होलिका जलाने का समय सन्ध्या है, पर यदि उस समय भद्रा हो तो रात्रि में जलावे । किसी अविवाहित लड़के के हाथ से होली में अग्नि दिलवानी चाहिये । अर्घ्य, पाद्य, धूप, दीप, आरती आदि से अग्नि की पूजा करके गाते, बजाते, हंसते और ताली पीटते हुए अग्नि की तीन परिक्रमा करना चाहिये । परिक्रमा से पूर्व अग्नि में घृत की पाँच आहुति देना चाहिये । इतनी सब क्रिया लाई हुई अग्नि की करके तब बालक के हाथ से ढेर में अग्नि लगवा दे । फिर उस अग्नि में षोड़शोपचार से होलिका देवी का पूजन करे । अन्त में चार पुष्पांजलि देकर प्रार्थना करना चाहिये ।

जिस दिन प्रातः सूर्योदय में चैत्र कृष्ण प्रतिपदा पड़ती हो उस दिन धूलिचन्दन होता है । प्रातः पहिले चाण्डाल स्पर्श का विधान है । तदनन्तर तैल लगा स्नान करके जहाँ होली जली थी, वहाँ जाकर प्रार्थना करके वह भस्म मस्तक में लगाना चाहिये । फिर आम्र मंजरी (मौर) और चन्दन मिलाकर खाना चाहिये । तदनन्तर सुहृद्

सम्बन्धियों को गुलाल लगाना और पान इलायची से सत्कार करना चाहिये ।

आजकल धूलि और गन्दा पानी आदि फेंकने की घृणित प्रथा चल पड़ी है । गाली वकना और गन्दगी डालना तो असुरों का अनुकरण करना है । केशर, अबीर आदि से एक दूसरे को सत्कृत करते हुए भक्त प्रह्लाद की रक्षा और चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के उपलक्ष्य में भगवान का गुणानुवाद गाना चाहिये । अश्लील गाली वकने का यह पर्व नहीं । इसी दिन काम भस्म किया गया है, अतः यह पर्व संयम की शिक्षा देता है ।

संसार की प्रत्येक जाति में एक आनन्द का पर्व वर्ष में आता है । वसन्त के उल्लसित प्रांगण में हमारा यह पवित्र पर्व पड़ता है । चांडाल स्पर्श इस दिन बिछुड़ों को गले लगाना बतलाता है । वर्ष भर की शत्रुता और द्वेष भूलकर यह रंग के बहाने हमें परस्पर अनुराग बिखेरने को समझाता है । इस दिन सब द्वेष भूलकर सब प्रेम से मिलें और श्रीहरि के गुण गावें, यही होली का तात्पर्य है ।

३४-शीतलापूजन
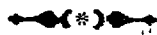
यह पर्व भी माताओं का पर्व है और चैत्र कृष्ण षष्ठी को पड़ता है । इस दिन शीतला देवी का पूजन किया जाता है । उन्हें अक्षत, गुड़ आदि चढ़ाये जाते हैं । गृह देव की घर-घर पूजा होती है । सामूहिक रूप से ग्राम्य देवता की पूजा और हवन होता है । ग्राम के

चतुर्दिक सुगन्धित अर्घ्य दिया जाता है और ग्रामकालिका की विधिवत पूजा की जाती है।

कहीं-कहीं यह पूजा आषाढ़ या श्रावण में होती है और कहीं भाद्रपद या क्वार में भी। नवरात्र में भी इसे लोग कर लेते हैं। कहीं वर्ष में दो बार ग्राम्य देवता की पूजा होती है। ग्राम्य देवता की पूजा और गृह देवता की पूजा चाहे जब भी हो, पर शीतला पूजन चैत्र कृष्ण षष्ठी को ही होता है। इसमें कोई विकल्प नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म अधि देववाद का समर्थक है। उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु, स्थान, काल और क्रिया की संचालिका एवं नियामक एक शक्ति होती है। वह शक्ति उसकी अधिष्ठाता कही जाती है। देवी भागवत में आया है कि असुर वध के लिये देवी ने अपने शरीर से बहुत सी शक्तियों को प्रकट किया और युद्ध के पश्चात् उनको आज्ञा दी कि तुम सब एक-एक गांव में विराजो। यही ग्राम कालिकायें कहलाईं।

शीतला महामारी की अधिष्ठाता देवी मानी जाती हैं। चेचक का नाम ही शीतला पड़ गया है। चैत्र से भारत में गर्मी का ऋतु प्रारम्भ होता है और महामारियों का यही समय होता है। इस समय के आरम्भ में शीतला की पूजा उनसे सुरक्षित रहने के लिये की जाती है।

नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों को पीसकर प्रत्येक घर के आंगण में और ग्राम के चारो ओर अर्घ देना, विशाल हवन, कुछ विशेष रोग-नाशक वस्तुओं को द्वार पर लटकाना प्रभृति किसी भी विमारी को दूर करने के लिये पर्याप्त है। इससे बीमारी के विषैले कीटाणु नष्ट होते हैं। वायु शुद्ध होकर स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त हो जाती है। सामान्य दृष्टि से देखने पर भी इस आराधना में महामारियों को दूर करने के उपकरण उपस्थित हैं।

पूजा-विधान आर्य संस्कृति की एक अपनी विशेषता है। वह भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की उन्नति में मानव की साधक होती है। तीनों प्रकार की बाधायें उसके द्वारा निवृत्त होती हैं। इसके साथ ही उसमें लोक कल्याण की भावना कूट कूटकर भरी है। शीतलापूजन न केवल अपने लिये, बल्कि पूरे समाज एवं राष्ट्र के कल्याण के लिये होता है।

३५—मत्स्य जयन्ती

दिन था चैत्र शुक्ल पंचमी का, राजर्षि सत्यव्रत प्रातःकाल अंजलि में जल लेकर सूर्य को अर्घ्य देने जा रहे थे। समुद्र की एक छोटी सी मछली उनकी अंजलि में आ गई। उन्होंने उसे पुनः जल में डाल दिया। मछली बोली "राजन्! मेरे सबल जाति वाले मुझे भक्षण कर जावेंगे, इस भय से मैं आपकी शरण में आई हूँ! शरणागत का आप त्याग क्यों कर रहे हैं?" दयालु राजा ने उसे उठाकर समुद्र से कमंडल में डाल दिया और संध्या समाप्त करके आश्रम में आये।

वह कोई सामान्य मत्स्य नहीं था। प्रलय समय के निकट आने पर ऊँघते हुए ब्रह्मा के मुख से निकले वेदों को हयग्रीव दैत्य ने ग्रहण कर लिया और वह रसातल में चला गया। उसका वध करके वेदों का पुनरुद्धार करने के लिये भगवान ने स्वयं यह रूप धारण किया था। थोड़ी ही देर में उनके शरीर से कमंडल भर गया। राजा ने उन्हें एक हौज में डाला, हौज में भी वृद्धि का स्थान न रहा तो कुण्ड में, कुण्ड से

सरोवर में और सरोवर से नदी में उस मत्स्य को डाला गया । वह वहाँ भी इतना बढ़ा कि राजा उसे समुद्र में डालने पर विवश हुए।

जब राजा उस महामत्स्य को समुद्र में डाल रहे थे तो उसने कहा "राजन् ! मैं आपकी शरण आया हूँ । यहाँ मुझे मगर प्रभृति समुद्री जीव खा जावेंगे । मुझ शरणागत का त्याग आपके लिये योग्य नहीं " राजा मत्स्य की आश्चर्यजनक वृद्धि से पहिले से चकित थे, उसकी मनुष्यवाणी और उपरोक्त वचन सुनकर उन्होंने ध्यान किया । भक्तवत्सल भक्त से छिप नहीं सके । उस महाभाग ने "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव" को पहिचान लिया और उनकी स्तुति करने लगा। भगवान ने राजा को प्रलय की सूचना दी और रक्षा का उपाय बताया।

ठीक सातवें दिन उमड़ते हुए समुद्रों ने पृथ्वी को डुबा दिया। भगवान के आदेशानुसार एक नाव आई। राजा सनकादि कुमारों के साथ नाव में बैठे। इसी समय वह एक शृंगधारी मत्स्य भगवान प्रकट हुए। वासुकी नाग के द्वारा वह नाव उनकी उस शृंग में बाँधी गई। समुद्र में विहार करते हुए उन्होंने सत्यव्रत को ज्ञानोपदेश किया प्रलयकाल समाप्त होने पर यही सत्यव्रत स्वायंभुव मनु हुए और भगवान ने हयग्रीव को मार कर वेदों का उद्धार किया।

मत्स्यावतार के उपलक्ष्य में यह मत्स्य जयन्ती मनाई जाती है। इस दिन प्रातः मत्स्यमूर्ति द्वार पर अंकन करके पूजन करने की विधि है। मछलियों को आटे की गोलियाँ देनी चाहिये । यह व्रत समस्त आधिदैविक उपद्रवों का नाशक बताया गया है। इस दिन मत्स्यावतार के चरित्र का श्रवण भी करना चाहिये।

३६—गौरी जयन्ती

"सती जो तजी दक्ष मख देहा।
जनमी जाई हिमाचल गेहा॥"

पर्वतराज कुमारी के पवित्र जन्म की इस तिथि चैत्र शुक्ल अष्टमी को आप गौरी जयन्ती कह लें या दुर्गा अष्टमी। पातिव्रत्य का शब्द ही पार्वती-व्रत का एक रूप है। उन्होंने ही इसका उज्वल आदर्श विश्व के सम्मुख रखा है। उन्हीं के व्रत की महिमा थी कि वे कामारि के आधे अंग की भागिनी बनीं।

इस दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ और कुमारिकायें व्रत रख कर गोबर निर्मित गौरी का पूजन करती हैं। नवरात्र के पश्चात् इसी तिथि में देवी-विसर्जन भी होता है। अष्टमी की रात्रि में देवी की पूजा नवमी के प्रातःकाल के निकट होती है। मातायें द्वार को सुन्दर चित्रण से अंकित करती हैं। कलश स्थापन करके उसपर देवी की पूजा करती हैं। पूरा भवन स्वच्छ करके पहिले से लिपा पुता होता है। गन्दे पानी बहनेवाली नाली विशेष रीति से स्वच्छ की जाती है। रात्रि जागरण करके अनेक प्रकार के पक्वान्न बनाती हैं और उससे भगवती को भोग लगाती हैं।

नवरात्र पर पृथक् ही कुछ लिखने का विचार है, अतः उसे यहाँ अंकित नहीं करना चाहता। शक्ति-पुजा मानव समाज के लिये कितनी आवश्यक है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। बिना शक्ति की आराधना किये किसी भी समाज या राष्ट्र का अभ्युत्थान नहीं हो सकता। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनिवार्य है। शक्ति की प्राप्ति शक्ति की अधिष्ठातृ देवी की प्रसन्नता से ही हो सकती है।

स्त्रियों की आराध्य माता गौरी हैं। अपने परम पूज्य पतिदेव के अतिरिक्त ये गिरिजा की ही उपासना कर सकती हैं। अपने समस्त अभीष्ट की प्राप्ति वे उन्हीं की आराधना से कर सकती हैं। उनके अतिरिक्त अन्य किसी की भी पूजा या आराधना की उनके लिये आवश्यकता नहीं।

शास्त्र कहते हैं कि "स्त्री अपने सब अभीष्ट पतिसेवा से ही प्राप्त करे।" यही पतिसेवा पार्वती को सब कुछ है। पति का अपमान वे न देख सकीं और शरीर त्याग दिया। दूसरे जन्म में अपनी घोर तपस्या से ही उन्होंने पुनः भगवान शिव को प्राप्त किया। उनकी सच्ची पूजा तो पतिव्रत धर्म और सच्चे हृदय से नम्रतापूर्वक पति की सेवा करना है। उनके निमित्त व्रत करते हुए माताओं को उनके जीवन से मिलने वाली इस शिक्षा को भूलना नहीं चाहिये। उनकी सच्ची प्रसन्नता प्राप्त करने का यही मार्ग है।

३७–रामनवमी

रावण के अत्याचारों से विश्व त्राहि-त्राहि कर रहा था। पृथ्वी से लेकर देवलोक तक पर उस राक्षस का आतंक था। हवन, पूजन, यज्ञ, वेदपाठ सब बन्दप्राय थे। ऋषियों की अस्थियों का वनों में ढेर लग चुका था। गौओं के मांस से निशाचर मोटे हो रहे थे। सुरा की धारा से वायुमण्डल अपवित्र हो गया था। देवता, ब्राह्मण, गौ, ऋषि और भक्त सब युगों के समान पलों को बिताते हुए ऊपर दृष्टि लगाये

उस "यदा यदा हि धर्मस्य..." की प्रतिज्ञा करनेवाले की उत्कट प्रतीक्षा में किसी प्रकार अपने प्राणों को बचाये थे।

सहसा एक दिन दोपहरी में उत्तर कोशलाधिपति महाराज दशरथजी के द्वार पर नगाड़ों की गड़गड़ाहट हुई। सहनाई ने एक मधुर रागिनी छेड़ी। शंख और घड़ियालों के गगनभेदी घोष में संसार ने सुना कि माता कौशल्या की गोद एक सुन्दर नव घनश्याम शिशु से भूषित हो गई। वह सौभाग्यशाली दिन चैत्र शुक्ल पक्ष नवमी का था और उस समय पुनर्वसु नक्षत्र था।

दो तीन दिन के भीतर ही वह नव जलधर सुमित्रा और कैकेयी के कुमारों से मिलकर एक से चार हो गया। उसके श्रीचरणों का स्पर्श पाकर पृथ्वी ने सन्तोष की साँस ली। पीड़ितों को धैर्य हुआ और लंका की ध्वजा टूटकर गिर गई। भक्तों का हृदयधन भला कितनी देर उनसे पृथक् रह सकता है? सो भी जब कि वे संकट में उसे कातरकंठ से पुकारते हों।

मुझे पूरे रामायण की आवृत्ति नहीं करनी है। सभी जानते हैं कि उस भक्तभयहारी ने क्या क्या किया! वह राजकुमार बनकर भोग भोगने नहीं आया था। उसे पृथ्वी से असुरों का भार नष्ट करना था। वनवासी बनकर और सीता का वियोग सहकर भी उसने अपने कार्य को पूर्ण किया। उसका पूरा चरित्र भावमय और अनुकरणीय है। रामायण पढ़िये और उसे आदर्श बनाइये।

श्री राघवेन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम होकर प्रकट हुए थे। उनके आनेका प्रयोजन था धर्म के आदर्शों को व्यावहारिक रूप में विश्व के सम्मुख रखना। दुष्टों का नाश तो साकेत से भी किया जा सकता था। अतः इस बार राघव ने धर्म के प्रायः प्रत्येक अंग को पूर्णरूप से अपने आचरण में लाकर संसार को बतलाया। विश्व को उसके कल्याण का

मार्ग सरल करने के लिये स्वयं उसका आचरण किया। संसार में यदि राम के आदर्श पर चलने की रुचि किसी भी अंश में हो तो आज सा आतंक सदा के लिये दूर हो जावे। विश्व में प्रेम और साम्य का साम्राज्य स्थापित हो जावे।

जिस दिन नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र मिले उसी दिन पर्व होता है। यदि पुनर्वसु न मिले तो जिस दिन दोपहर में नवमी मिलती हो, उसे पर्व मानना चाहिये। इस दिन प्रातः से व्रत करना चाहिये। प्रायः ऐसी प्रथा है कि जन्मोत्सव के पश्चात् दोपहर में व्रत लोग समाप्त कर देते हैं। परन्तु शास्त्रीय नियमानुसार पूरे आठ प्रहर का व्रत करना चाहिये। अर्थात् दूसरे दिन दशमी में पारण करना चाहिये। उपवास करके उस दिन दिनभर राम नाम का जप, रामायण पाठ तथा श्रवण, रघुनाथजी की पूजा और श्री राघवेन्द्र का ध्यान करना चाहिये। अपनी शक्ति भर उत्सव मनाना चाहिये।

प्रायः सभी देशों में महापुरुषों का स्मृति दिवस मनाने की प्रथा है। इसका उद्देश केवल उत्सव कर लेना मात्र नहीं। हमें इस दिन राघव के चरित्रों का मनन करना चाहिये। उन्हें ज़ीवन में ले आने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिये। सच्चा रामभक्त वह है जो राम के आदर्श पर चलता है। जिसने राघव के एक भी गुण को दृढ़ता से पकड़ा, उसीने सच्ची रामनवमी मनाई। वैसे हुल्लड़ तो करनेवाले बहुतेरे हैं।

भगवान राम की गुरुसेवा, पिता के वचनों से राज्यत्याग, केवट जैसे दीन और भील किरात से जंगलियों को अपनाना, पत्नी के प्रति उनका प्रेम, शरणागत सुग्रीव और विभीषण की रक्षा में दृढ़ता, भाई के प्रति प्रेम, दृढ़ प्रतिज्ञा में निष्ठा, मातृभक्ति, प्रजा के लिये प्रिय पत्नी का भी त्याग, एकपत्नीव्रत, कहाँ तक गिनाया जावे, वे गुणाकर अखिल कल्याण गुणगणनिधान हैं। उनके एक भी गुण का अनुकरण जीव के कल्याण के लिये पर्याप्त है।

राम के दो प्रधान गुण हैं—अपने बाण की भाँति उनका वचन अव्यर्थ है। वे कहकर पलटना नहीं जानते और स्वप्न में भी उनसे परस्त्री का चिन्तन नहीं होता। आज अधोमुख भारत इस रामनवमी के पवित्र पर्व में क्या इन्हें अपनाने की प्रतिज्ञा करेगा ?

श्रीराम के साथ हमें महाराज दशरथ का पुत्र प्रेम, गुरु वशिष्ठ का शिष्य स्नेह, भरतजी का अविचल अनुराग, लक्ष्मणलाल की दृढ़ भ्रातृ-निष्ठा, पवनकुमार की स्वामिभक्ति, माता जानकी का पातिव्रत्य, उर्मिलाजी की सास-स्वसुर सेवा, केवट का प्रेम, अंगद की भक्ति, गृद्धराज की कर्तव्य निष्ठा आदि भूल नहीं जाना चाहिये। जीवन के प्रत्येक भाग में और समाज के प्रत्येक कार्य में राम और राम के सहचर हमें पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। हमारा कल्याण इसी में है कि हम श्रद्धापूर्वक उनका अनुगमन करें।

३८—हनुमज्जयन्ती

सबसे पहिला तो यही विवाद है कि हनुमज्जयन्ती कब मनाई जावे। साधारणतया यह चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को मनाई जाती है। कल्प भेद से चैत्र शुक्ल द्वादशी को मघा नक्षत्र में हनुमानजी का प्रकट होना शास्त्रों में मिलता है। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को भी कहीं कहीं यह पर्व मानते हैं। अधिकांशतया चैत्र की पूर्णिमा ही मनाई जाती है।

इसी पुण्य तिथि में माता अञ्जना से एकादशवें रुद्र, पवनपुत्र श्री हनुमानजी प्रकट हुए थे। उत्पत्ति और पूरे चरित का वर्णन में

यहाँ नहीं करूँगा। उसके लिये आपको हमारी "आञ्जनेय" (हनुमान चरित) नाम की पुस्तक देखना चाहिये। यहाँ तो हमें इतना ही कहना है कि इस दिन हम सबको हनुमानजी का जन्मदिन मनाना चाहिये। हनुमानजी का पूजन, उनके और उनके आराध्य रघुनाथ-जी के चरित्र का श्रवण तथा संकटमोचन मन्त्र का जप इस दिन का प्रधान कार्य है।

हनुमानजी का प्राकट्य सूर्योदय से कुछ पूर्व हुआ था, अतः प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमा में जयन्ती मनाना उचित है। व्रत हो सके तो सर्वोत्तम। इस दिन पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन होना चाहिये। भगवान का स्मरण करते हुए बजरंगबली की उपासना करना चाहिये। अखाड़ों का उद्घाटन करने के लिये यह शुभ पर्व है।

हनुमान चरित का मनन कीजिये। वे बल की मूर्ति हैं, ब्रह्मचर्य के स्वरूप हैं, दीनों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिये ही उनका मानो प्राकट्य है। क्या आप उनका अनुकरण करेंगे। आज हमें शक्ति चाहिये, संयम चाहिये और चाहिये दुष्टनिवर्हण तेज। केशरी किशोर से हम इसे सीख सकते हैं। दीनों की रक्षा के उस व्रती की पूजा हमें दीन रक्षण में प्रेरित करे।

महावीर होने के साथ श्री मारुति सेवा के आदर्श हैं। राम की सेवा उनमें मूर्त हो गई है। विद्या, बुद्धि, और कलाओं के वे विधायक हैं। उनके पुजारी में बल के साथ नम्रता, तेज के साथ सेवा और दुष्ट दलन के साथ दीनों के रक्षण का स्वभाव होना चाहिये। महावीर की उपासना करने के अधिकारी दुर्बल, लम्पट, कायर, उद्दण्ड, मूर्ख और निकम्मे लोग नहीं। वीर, सदाचारी, तेजस्वी, सेवापरायण, नम्र, विद्वान, बुद्धिमान और स्वाभिमानी व्यक्ति ही उस कपिकेशरी की उपासना कर सकते हैं। भारत की इस दीन हीन दशा में हमें

महावीर के उपासकों की आवश्यकता है। लड्डू चढ़ाने वाले नहीं—सच्चे उपासकों की। इस शुभ पर्व में, रामदूत की इस जन्म तिथि में क्या आप उनके सच्चे पुजारी बनने की प्रतिज्ञा करेंगे?

३९-अक्षय तृतीया

वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षय तृतीया होती है। सर्वप्रथम इसी दिन से सतयुग प्रारम्भ हुआ था। इस दिन का किया हुआ जप, तप, ज्ञान, दान आदि अक्षय फल देनेवाला होता है, इसलिये इसे अक्षय तृतीया कहते हैं। भविष्य पुराण में विस्तार से इसका माहात्म्य श्रीकृष्ण भगवान ने धर्मराज युधिष्ठिर को सुनाया है। यदि इस तिथि को बुधवार और रोहिणी नक्षत्र पड़ जाय तो पर्व महाफलदायी हो जाता है।

भविष्योत्तर में शाकल नगर के धर्मदास वैश्य की कथा है। स्त्री के मना करने पर भी उसने अपनी सब सम्पत्ति इस दिन ब्राह्मणों को दान कर दी। फलतः दूसरे जन्म में वह कुशावती का राजा हुआ। अक्षय तृतीया को दान करने के फल से उसका कोष अक्षय हो गया था। चाहे जितना दान करने पर भी वह घटता नहीं था।

वृन्दावन में श्री बाँकेविहारीजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। वर्ष में केवल इसी दिन वहाँ श्री विग्रह के चरण दर्शन होते हैं। शेष वर्षभर वे वस्त्राच्छादित रहते हैं। यदि अधिक बर्फ न पड़े तथा कोई दूसरी बाधा न हो तो इसी तिथि में श्री बद्रीनाथजी के मन्दिर के पट खुलते हैं।

पृथ्वी को इक्कीस बार दुष्ट क्षत्रियों से रहित करने वाले भृगुवर श्री परशुरामजी का प्रादुर्भाव इसी तिथि में हुआ था। परशुराम

जयन्ती अक्षय तृतीया को ही पड़ती है। इस दिन परशुरामजी की पूजा का विधान शास्त्रों ने किया है। विशेषतः परशुराम पूजा में अर्घ्य प्रधान माना जाता है।

अक्षय तृतीया दानप्रधान पर्व है। इसके आस पास या इसी दिन मेष की संक्रान्ति भी पड़ती है। इस संक्रान्ति के दिन ब्राह्मणों को चीनी या गुड़ के साथ सत्तू दान करने की प्रथा है। इस दिन स्वयं भी सत्तू खाना चाहिये। वैद्यक शास्त्र के अनुसार भी इस ऋतु में सत्तू विशेष लाभकारी सिद्ध होता है। इस गर्मी में वह हल्का और पाचक होता है।

अक्षय तृतीया क्या है? सतयुग और परशुराम का संस्मरण! बिना ध्वंस के नव निर्माण नहीं होता। आज के वैषम्य और कटुता-पूर्ण स्वार्थ को ध्वंस करने के लिये परशुराम की आवश्यकता है। उन्हीं के पथ का अनुसरण इसे दूर करने में समर्थ है। पर केवल ध्वंस ही नहीं, उसमें सतयुग की स्मृति रहनी चाहिये। यह स्मरण रखना होगा कि इस घोर विनाश के पश्चात् सतयुग का साम्य, शान्ति और ऐक्य प्रतिष्ठित करना है। वर्ष वर्ष यही सिखलाने यह तिथि आती है। किन्तु कोई सीखे तब तो।

४०—जानकी नवमी

मिथिला में अकाल पड़ा था। प्रजा पीड़ित हो रही थी। महाराज जनक ने ऋषियों से सलाह की और उनकी आज्ञानुसार यज्ञ करने का निश्चय किया गया। स्वर्ण का हल बना और नरेश स्वयं यज्ञ की

पृथ्वी के कृपक । रावण ने ऋषियों से कर माँगा था और उन्होंने अपने एक एक बूंद रक्त से एक घड़ा भर कर उसके पास भेज दिया । घड़े को अपने नाश का कारण सुन दशमुख ने उसे लंका से सुदूर मिथिला प्रान्त में चुपचाप पृथ्वी में गड़वा दिया था। विदेह के हल का अग्रभाग—सीत घड़े से टकराया । राक्षस के पापों का वह घड़ा फूट गया और उससे राक्षसकुल को विनाश करने का कारण बनने वाली महाशक्ति प्रकट हुई ।

कहाँ का कष्ट और कैसा अकाल ! जहाँ साक्षात् श्री विराजमान हो गईं वहाँ भला दुर्भिक्ष कैसे रह सकता है । हल के अग्रभाग—सीत के लगने से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम सीता पड़ा । महाराज उस त्रिभुवन निधि को देखकर विदेहता भूल गये। पुत्री मानकर घर ले आये और महारानी ऐसी अलौकिक पुत्री पाकर कृतार्थ हो गईं। वह सौभाग्यशाली तिथि थी वैशाख शुक्ल नवमी ।

खेद है कि पतिव्रताओं की प्रथम पूज्या जगज्जननी माता जानकी की यह जयन्ती राम नवमी की भाँति सब कहीं धूम धाम से अब नहीं मनाई जाती। यद्यपि मिथिला प्रान्त में यह उत्सव मनाया जाता है; पर इसे सार्वदैशिक होना चाहिये। भारत राम से पहिले सीता का नामोच्चारण करता है। माता सीता की तपस्या और उनका त्याग हम भूल नहीं सकते।

जानकी नवमी को सम्भव हो तो व्रत रखकर उत्साहपूर्वक सीताजी का जन्मोत्सव दोपहर के समय मनाना चाहिये। इस कार्य के लिये कार्यकालव्यापिनी तिथि ग्रहण करना चाहिये । वाल्मीकीय या मानस रामायण से माता सीता के चरित्र की कथा पढ़ना और सुनना चाहिये। उत्सव का सब प्रकार रामनवमी के समान है।

रामायण की कथा सभी लोग जानते हैं । पति के साथ वन में जाकर, लंका की वीभत्सिका में भी आराध्य चरणों को धारण किये

रहकर तथा पति के द्वारा अन्त में परित्यक्ता होने पर भी पतिप्राणा रहकर जगन्माता ने जो अग्नि परीक्षा दी है, वह लंका की अग्नि परीक्षा से सहस्रगुना अधिक है। उनके ध्यान और पूजन से नारी पातिव्रत्य जैसे कठोर व्रत की शक्ति पाती है। साथ ही उस योग्य माता की शिक्षा का परिणाम भी हम देखते हैं जब पढ़ते हैं कि लव और कुश दो बालकों ने अयोध्या की विश्वविजयिनी सेना को तथा लंकाविजयी कपिदल को, भाइयों, हनुमान प्रभृति सखाओं के साथ राघवेन्द्र को भी रणभूमि में पराजित कर दिया। नारीत्व और मातृत्व का पूर्ण आदर्श जहाँ एकत्र हो, उसकी उपासना कौन नहीं करेगा?

४१—नृसिंह चतुर्दशी

नन्हाँ सा बालक था, माता के गर्भ में ही देवर्षि नारद ने उसे कुछ सिखा दिया था और उसने उसी गुरुमन्त्र पर हठ पकड़ ली थी। बालक अजहद हठी और नितान्त निर्भय था। दैत्यराज हिरण्यकशिपु आजकल त्रिलोकी के अधिपति थे। अपने अपूर्व शौर्य से उन्होंने सब इन्द्रादि लोकपालों को गुफाओं में भाग छिपने के लिये विवश कर दिया था और स्वयं उन सबों के ऐश्वर्य का अकेले उपभोग कर रहे थे। काल भी उनकी भृकुटी देखा करता था। इतना सब होने पर भी वह अपने इस हठीले लड़के से तंग थे। लाख समझाने और भय दिखलाने पर भी वह लड़का श्रीहरि का नाम और उनकी उपासना नहीं छोड़ रहा था। दैत्यराज को यह असह्य था।

साम और दाम व्यर्थ होने पर दण्ड आरम्भ हुआ। उस प्रबल निष्ठा में भेद के लिये अवकाश ही नहीं था। वज्रों की नोकें उस मृदुल

शरीर से टकरा कर टूट गईं, सर्पों के विषैले दंत कुण्ठित हो गये, समुद्र में डुबाने पर भी वह हँसता रहा और पर्वत से गिरा देने पर भी उसकी पतली अस्थियाँ नहीं टूटीं। वरदान प्राप्त होलिका उसे अग्नि में जलाने जाकर दग्ध हो गई और उस पर प्रयुक्त कृत्या ने प्रयोक्ता पर हाथ साफ किया। दैत्यराज नन्हें बच्चे के भय से काँप रहे थे, मानो वह शरपायी के समान अमर है।

यही वैशाख शुक्ल चतुर्दशी की तिथि थी, लगभग सन्ध्या होने की थी। दैत्यपति ने स्वयं तलवार ली और हाथ जोड़ कर खड़े बालक प्रह्लाद से पूछा "बता तेरा हरि कहाँ है? मैं आज तेरे टुकड़े काट फेंकूँगा। वह आये और तेरी रक्षा करे!" निर्भीक बालक ने कह दिया "पिताजी! वह तो सब कहीं है।" यह असह्य था और असुर के लिये अविश्वनीय। उसने डाँटकर पूछा "इस खम्भे में भी है?" उत्तर मिला "अवश्य!" सिंहासन से उछल कर उसने उस खम्भे में एक घूसा मारा। पता नहीं खम्भा घूसे के आघात से फटा या किसीके फाड़ने से; पर एक भयंकर शब्द के साथ उसमें से भगवान नृसिंह प्रकट हुए। जंघा पर रखकर नखों से उन्होंने दैत्यराज का पेट फाड़ डाला और भक्त प्रह्लाद दैत्यपति बनाये गये। तभी से इस चतुर्दशी को नृसिंह चतुर्दशी कहते हैं।

जिस दिन सूर्यास्त पर्यन्त चतुर्दशी हो, उस दिन व्रत करके सन्ध्या के समय भगवान नृसिंह का पूजन करना चाहिये। प्रह्लाद चरित्र की कथा सुननी चाहिये और हृदय में यह पक्का विश्वास कर लेना चाहिये कि भगवान सर्वव्यापी हैं। वे भक्त के लिये कहीं भी प्रकट हो सकते हैं। शास्त्र कहता है कि जो आज व्रत करके भगवान नृसिंह की पूजा करता और प्रह्लाद चरित्र सुनता है, उसके सब संकट भगवान नृसिंह नष्ट कर देते हैं।

यह पर्व एक सूचना देता है—अमूल्य सूचना। कोई चाहे मृत्यु को जीत ले या अमर होकर काल को मार डाले, पर प्रभु के सच्चे भक्तों पर उसकी प्रभुता नहीं चल सकती। संसार में सात्विकता और सात्विक लोगों का विरोध करके कोई भी अपने को सुरक्षित नहीं रख सकता। सबसे बड़ी शक्ति श्रीहरि की शरण है। प्रभु के शरणागत को न तो कहीं कष्ट है और न भय। वह समस्त विरोधी परिस्थितियों में सुरक्षित है।

४१—वटसावित्री

वटपूजन और वटसावित्री के इस व्रत में भी कई विवाद हैं। कहीं ज्येष्ठ पूर्णिमा, कहीं भाद्रपद की पूर्णिमा और कहीं ज्येष्ठ मास की अमावस्या को इस व्रत का वर्णन मिलता है। अधिकांश और प्रचलित परिपाटी ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी को व्रत करने की है। चतुर्दशी विद्धा अमावस्या को व्रत किया जाता है। यह व्रत स्त्रियों के लिये है। कुमारी, विवाहिता, विधवा, सपुत्रा, अपुत्रा सभी प्रकार की स्त्रियों के लिये व्रत का विधान है। विधान तो यह है कि त्रयोदशी से ही व्रत और नियम धारण करे; परन्तु अब प्रायः केवल एक दिन अमावस्या को ही व्रत माना जाता है।

बांस की नई कंडी (टोकरी) में चतुर्मुख ब्रह्मा और उनके वाम भाग में सावित्री की मूर्ति एक सेर बालू के ऊपर स्थापित करना चाहिये। इसी प्रकार बांस की दूसरी कंडी में एक सेर बालू भर कर सत्यवान और सावित्री की मूर्ति स्थापन करना चाहिये। यह स्थापन और पूजा वटवृक्ष के नीचे होनी चाहिये। आवाहन, अर्घ्य, पाद्य,

प्रभृति षोड़शोपचार से ब्रह्मा सावित्री की, तदुपरान्त सत्यवान सावित्री की पूजा करके तब वट की जड़ में पानी दे। पूजा के आरम्भ में ही चन्द्रमा को अर्घ्य देना चाहिये। वट को सींच कर, रंगीन सूत उसकी जड़ में लपेट कर तब अक्षत, धूप, दीप आदि से वट पूजन करे और फिर वट की प्रदक्षिणा करे। अन्त में ब्रह्मपत्नी सावित्री की स्तुति करके उन्हें पुष्पाञ्जलि और अर्घ्य देना चाहिये। ब्रह्मा, सत्यवान सावित्री को भी अर्घ्य देकर पूजा समाप्त करे।

सावित्री सत्यवान की कथा बड़ी प्रसिद्ध है। मद्र देश के राजा अश्वपति ने सावित्री की आराधना से एक कन्या प्राप्त की और उसका नाम सावित्री रखा। उन्होंने वट मूल में यह उपासना की थी और ज्येष्ठ अमावस्या को उन्हें सावित्री ने दर्शन दिया था। राजा की कन्या ने बड़ी होकर सत्यवान का वरण किया। सत्यवान अल्पायु था। ठीक विवाह के एक वर्ष पश्चात् वन में अचानक उसका देहान्त हो गया। सावित्री को पहले से पता था। वह तीन दिन से उपवास करके पति के साथ गई थी। अपने पातिव्रत्य के बल से उसने यमराज को सन्तुष्ट किया और सत्यवान को पुनः जीवन मिला। सत्यवान भी वट के नीचे मृत पड़ा था और ज्येष्ठ अमावस्या को जीवित हुआ था। यह पर्व उसीका स्मारक है।

वटपूजन के दिन लोग वट की डाल घर में लाकर पूजन करते हैं। जिसकी आज पूजा करनी है, उसी की डाल काटी या कटवाई जाय, यह उचित नहीं। कटी डाल का पूजन कोई अर्थ नहीं रखता और न आज डाल काटना योग्य है। इस पर्व में माताओं को सावित्री के महान पातिव्रत्य तथा उसकी अपार शक्ति का स्मरण करना चाहिये। मृत्यु पतिव्रता के लिये कोई वस्तु नहीं।

४३—गंगा दशहरा
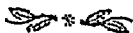
महाराज सगर के अश्वमेध यज्ञ का अश्व इन्द्र ने चुराकर पाताल में महर्षि कपिल के समीप छिपा दिया। सगर के साठ सहस्र पुत्रों ने पृथ्वी पर अश्व न पाकर पृथ्वी खोद डाली; परन्तु कपिल के साथ उद्दण्डता करने के कारण वे उनकी क्रोधाग्नि में भस्म हो गये। अश्व तो सगर के नाती अंशुमान ले आये, पर उन भस्म हुये सगरपुत्रों के उद्धार का साधन गङ्गाजी को लाना था। तीन पीढ़ी की तपस्या के पश्चात् भगवान वामन के चरणोदक से उत्पन्न, ब्रह्मा के कमण्डलु में स्थित उस गङ्गाजी को लाने में भगीरथ सफल हुये। शंकरजी ने प्रसन्न होकर गङ्गा को अपने मस्तक पर धारण करके उनका वेग सम्हाला।

जेष्ठ शुक्ल दशमी मङ्गलवार को हस्त नक्षत्र में सुरसरि का पृथ्वीपर अवतरण हुआ था। उसी दिन से यह पर्व गङ्गादशहरा माना जाता है। इसी दिन भगवान राम ने लंका विजय के लिये सेतु पर रामेश्वर की स्थापना और पूजा की थी। कायिक, वाचिक एवं मानसिक दशविध पापों को इस दिन का व्रत हरण करता है, अतः इसे दशहरा नाम से सम्बोधित किया जाता है।

यों तो गङ्गास्नान नित्य ही पापहारी है, पर इस दिन का स्नान विशेष महत्त्व रखता है। नवमीविद्धा दशमी दशहरा मानी जाती है। यदि ऐसी तिथि न मिले तो सूर्योदयव्यापिनी दशमी लेना चाहिये। इस दिन का प्रधान कार्य है गङ्गापूजन और गङ्गास्नान। यदि गंगाजी न प्राप्त हों तो किसी भी नदी में गङ्गाजी के निमित्त से स्नान करके जलपूर्ण कलश पर गङ्गाजी की मगर पर विराजमान मूर्ति बना कर पूजा करना चाहिये।

गङ्गास्नान करने के पश्चात् धूप, दीप, चन्दन, पुष्प, दूध आदि से गङ्गाजी का विधिवत् पूजन करे। फिर जल-जीवों के लिये पानी में आटे की गोलियां, चने आदि छोड़े और तदनन्तर ब्राह्मणों को, गौओं को, यथासम्भव खिलावे और दान दे। गङ्गा, गौ और गौरी ये परस्पर अभिन्न मानी जाती हैं। इस दिन गङ्गास्नान और गङ्गापूजन करके मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है।

एकमात्र गङ्गाजल ऐसा संसार में है जो वर्षों पड़े रहने पर भी सड़ता नहीं। गङ्गाजल समस्त रोगों का नाशक है और गङ्गाजी की रेत पेट के अनेक रोगों की औषधि है। पाश्चात्य विशेषज्ञों को भी जांच के पश्चात् मानना पड़ा है कि गङ्गाजल में रोग के कीटाणुओं को नाश करने की अद्भुत शक्ति है। हैजे और प्लेग के कीटाणु इस जल में चार छ घण्टे भी जीवित नहीं रहते। भौतिक दृष्टि से भी गङ्गाजी का इस प्रकार मानव जाति के लिये अपार महत्व है। पारलौकिक दृष्टि से उनकी महिमा से शास्त्र भरे पड़े हैं।

४४–निर्जला एकादशी
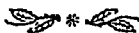
दूसरी एकादशियों के समान ज्येष्ठ शुक्ल की इस निर्जला एकादशी को भी स्मार्तदशमी विद्धा करके भी पारण में द्वादशी चाहते हैं और वैष्णव पारण चाहे त्रयोदशी में करना पड़े, पर दशमीविद्धा व्रत नहीं करते। सन्ध्या के समय आचमन और स्नान के अतिरिक्त जल ग्रहण करने से व्रत भंग होता है।

कथा इस प्रकार है कि एकबार भगवान व्यास पाण्डवों को एकादशी व्रत की विधि बतलाकर उस दिन भोजन करने के दोष भी बतला रहे थे। उनकी बातें सुनकर भीमसेन ने निवेदन किया "मेरे उदर में तो वृक नामकी अग्नि है। मुझे इसीसे लोग वृकोदर कहते हैं। वह अग्नि तभी शान्त होती है जब मैं बराबर कुछ खाया करूँ। अतः यह एकादशी के व्रत मेरे लिये असम्भव हैं। हां, मैं वर्ष भर में किसी प्रकार एक दिन व्रत कर सकता हूँ।" व्यासजी ने भीम की बात सुनकर उन्हें ज्येष्ठ शुक्लपक्ष की एकादशी को बिना पानी पिये व्रत करने को बताया। तभी से इसे भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं।

इस दिन निर्जल व्रत करते हुये भगवान विष्णु का शेषशायी रूप में पूजन करना चाहिये। जलधेनु का दान आवश्यक है। जल से भरे घड़े का दान किया जाता है। छाता, जूता, खड़ाऊं प्रभृति भी इस दिन दान करने की व्यवस्था है। जो इस एक एकादशी को विधिपूर्वक व्रत करके जल कलश का दान करता है, उसे सालभर की सब एकादशियों के व्रत का फल मिल जाता है।

बिना स्वयं कष्ट उठाये दूसरे को पीड़ा का अनुभव नहीं होता। ज्येष्ठ की प्रकाण्ड गर्मी में बेचारे पशु-पक्षी जल के बिना कितना कष्ट

पाते हैं, उनकी पीड़ा का अनुभव उन दिनों जल त्यागकर मनुष्य कुछ कर पाता है। यह नियम है कि अपने पर कष्ट आने पर समान पीड़ितों की ओर ध्यान जाता है। यह ध्यान जलदान द्वारा उनकी सहायता करने को प्रेरित एवं उत्सुक बनाता है।

पर्व और तीर्थ में जिस वस्तु का त्याग होता है, उसीका दान किया जाता है। गर्मी में सबसे आवश्यक वस्तु जल है। उन दिनों जल का अभाव भी बहुत से देशों में रहता है। ऐसे समय स्वयं जल का त्याग करके उसका दान करने की व्यवस्था की गई है। छाता, जूता प्रभृति गर्मी की आवश्यक वस्तुयें हैं, अतः उनके दान का भी विधान है। इस विधान में हिन्दूधर्म का "सर्वधर्महिते रताः" सिद्धान्त प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित है।

४५—रथयात्रा

सभी जानते हैं कि रथयात्रा जगन्नाथपुरी का एक महान उत्सव है। इस दिन भाई बलराम और सुभद्रा के साथ रथ में यात्रा करते हैं। यह उत्सव और भी बहुत स्थानों में मनाया जाता है। सब कहीं इसके मनाये जाने का विधान है और प्रत्येक देवालय में यह मनाया जाना चाहिये।

वर्षा के आरम्भ में भगवान रथ में बैठकर अपनी प्रजा की सुखशान्ति देखने के लिये यात्रा करते हैं, यही इस उत्सव का तात्पर्य है। जब भारत में हिन्दूराज्य था तो प्रायः क्षत्रिय नरेश इस दिन अपने देश में प्रजा की अवस्था देखने के लिये यात्रा करते थे और देखते थे कि वर्षा के आरम्भ में कृषक वर्ग को अपना कृषिकार्य संचालित करने में कोई कठिनाई तो नहीं है।

यह पर्व आषाढ़ शुक्लपक्ष की द्वितीया को मनाया जाता है। यदि उस दिन पुष्य नक्षत्र पड़ता हो तो पर्व अत्यन्त श्रेष्ठ माना जाता है। भगवान श्रीकृष्ण, शेषावतार श्रीबलरामजी और आदिशक्तिस्वरूपा श्री सुभद्राजी की काष्ठप्रतिमा बनाकर उन्हें रथ में बैठाना चाहिये। इनमें से प्रत्येक का रथ पृथक् पृथक् और पृथक् पृथक् विधि से बनाने का वर्णन है। हर एक रथ को कदलीस्तम्भ, तोरण, पताका, पुष्प माल्य आदि से भली प्रकार सजाना चाहिये। रथ के आगे आगे भगवन्नाम कीर्तन होना चाहिये।

रथ में बैठे भगवान के दर्शन करना, रथ खींचना, रथ के पीछे पीछे चलना या भगवान के आगे स्तुति कीर्तन करते हुये चलना महत्पुण्य कार्य हैं। शास्त्रों में इनका बड़ा माहात्म्य कहा गया है। इस दिन मन्दिर की और रथ की पताका मात्र का दर्शन देवदर्शन के तुल्य माना जाता है।

सर्वज्ञ जगदीश भी कृषिकाल से पूर्व प्रजा का निरीक्षण करना आवश्यक समझते हैं। इसमें भगवान की जीवों पर अपार दया सूचित की गई है। साथ ही नरेशों को उनका कर्तव्य केवल उत्पादक वर्ग से कर लेना मात्र नहीं। काम पूरा होने पर उसे फल में भाग लेने जाने का अधिकार तभी होता है; जब कार्यारम्भ से पूर्व वह उत्पादक वर्ग का निरीक्षण करके उनकी सभी असुविधाओं को दूर कर दे और उचित सुविधा प्रधान करे। यह निरीक्षण कर्मचारियों द्वारा कराना ठीक नहीं। अपने परिवार के साथ स्वयं नरेश को निरीक्षण करना चाहिये। स्त्रीवर्ग की कठिनाई जानने और सुविधा पहुँचाने के लिये राजा के साथ किसी ऐसी नारी का होना आवश्यक है जो नारीवर्ग की मांग पूरी कराने के लिये राजा से विशेष आग्रह करने की क्षमता रखती हो।

४६–देवशयनी एकादशी

ब्रह्मा, विष्णु और महेश के भेद से भारतीय धर्मशास्त्र तीन शक्तियां मानता है–उत्पादक, पोषक और विनाशक। वर्ष में इन तीनों शक्तियों का समय आता है। देवोत्थानी एकादशी के पश्चात् से पूरा शीतकाल भगवान विष्णु अर्थात् पोषक शक्ति का। पूरा ग्रीष्मकाल शंकरजी अर्थात् विनाशक शक्ति का और देवशयनी से देवोत्थानी तक का वर्षा-काल ब्रह्मा अर्थात् उत्पादक शक्ति का काल माना गया है।

इस आषाढ़ शुक्ल एकादशी को भगवान विष्णु क्षीरसागर में अपनी शेषशय्या पर सो जाते हैं और फिर देवोत्थानी एकादशी को उठते हैं। इसीलिये इस एकादशी को देवशयनी कहा गया है। इस दिन दूध से भगवान विष्णु को स्नान कराकर उनकी पूजा करनी चाहिये। इस दिन व्रत रहकर चार महीने के लिये किसी न किसी वस्तु के त्याग का विधान है। भोजन में कोई विशेष वस्तु न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा करके चार महीने तक नित्य उसका यथाशक्ति दान किया जाता है।

ग्रीष्म की गर्मी के पश्चात् वर्षा आई है। वायु में नमी भर गई है। शरीर की अग्नि शान्त हो गई है। इस ऋतु में पाचन शक्ति मन्द पड़ जाती है। पेड़ के पौधे भी केवल रस ग्रहण करते हैं, उन्हें परिपक्व नहीं कर पाती। प्रकृति यह प्रत्यक्ष बतलाती है कि इस समय पोषक शक्ति सुप्त है। अपनी जीवनचर्या इस बात को ध्यान में रखकर बनाना चाहिये।

भगवान को इस दिन दुग्धस्नान कराया जाता है। वर्षा में गरिष्ठ भोजन पच नहीं सकता, यह स्मरण रखना चाहिये। दूध-फल के

समान सुपाच्य पदार्थ ही आजकल उपयोगी हैं। इन दिनों एकाहारी रहा जावे तो वह सबसे श्रेष्ठ है। इससे मनुष्य अनेक व्याधियों से बचा रहेगा।

पालिका शक्ति के सुप्त होनेपर क्या होता है? उपद्रव। वर्षा में मच्छर, सर्प, बिच्छू, मलेरिया, ज्वर प्रभृति अनेक उपद्रव उठ खड़े होते हैं। व्यापार, यात्रा, प्रभृति पालन के सभी साधन बन्दप्राय हो जाते हैं। ऐसे समय में दीनों को भोजन का अभाव स्वाभाविक है। वे उद्योग करके प्राप्त करने का अवसर भी वर्षा में नहीं पाते। इस बात को ध्यान में रखकर व्यवस्था की गई है कि लोग अपने भोज्य पदार्थ में से किसी एक का त्याग करके उसे बराबर दूसरों को दान किया करें। दीन दुखियों का इस प्रकार निर्वाह हो जावेगा।

४७–प्रदोष
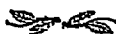
प्रदोष शंकरजी का व्रत है। जिस दिन संध्या के समय त्रयोदशी पड़ती हो, उसी दिन व्रत होता है। यह व्रत प्रत्येक पक्ष में आता है। भगवान शिव की प्रसन्नता के लिये यह व्रत किया जाता है। प्रायः यह व्रत काम्य होता है। किसी आपत्ति अथवा व्याधि के निवारणार्थ एवं किसी विशेष उद्देश की सिद्धि के लिये लोग व्रत करते हैं। दिन में व्रत करके सायंकाल शिवमन्दिर में जाकर विधिपूर्वक भगवान शंकर की पूजा करनी चाहिये। शिवलिंग के समीप दीपक जलाना चाहिये। यदि मन्दिर में जाने की सुविधा न हो तो पार्थिवपूजन किया जा सकता है। प्रदोष का पारण तारक दर्शन के पश्चात् होता है।

कहा जाता है कि प्रलय के समीप प्रदोष काल में ही भगवान शिव अपना त्रिशूल उठाकर, जटायें खोलकर तृतीय नेत्र से जगती को भस्म

करते हुए ताण्डव नृत्य करते हैं। उनके चरणाघात से पृथ्वी चूर चूर हो जाती है, गङ्गा की प्रबल धार भस्मीभूत संसार को डुबा देती है। जटाओं एवं भुजाओं के आघात से, त्रिशूल के लगने से तारागण टूट टूटकर गिरने लगते हैं। समस्त विश्व नष्ट हो जाता है।

इसी प्रदोषकाल में एक वार भवानी सिंहासन पर विराज रही थीं। उनके सम्मुख शिव ने ताण्डव प्रारम्भ किया। भगवान विष्णु ने मृदंग सम्भाला, इन्द्र ने मजीरे, ब्रह्मा ताल दे रहे थे, सरस्वती की वीणा और नारद का एकतार वज रहा था। सब देवता गायन, वाद्य, स्तुति और पुष्पवृष्टि से सहयोग दे रहे थे। इस समारोहावसान में प्रसन्न होकर अम्बिका ने जगती को यह वरदान दिया कि जो कोई प्रदोष काल में व्रत करके शिवार्चन करेगा, उसकी सब वाधायें दूर हो जावेंगी और समस्त अभीष्ट प्राप्त होगा। प्रदोष-व्रत इन उपरोक्त दोनों घटनाओं का स्मारक है।

एक दिन यह समस्त ब्रह्माण्ड नष्ट होगा। हमारे सम्मुख का यह अनन्त विश्व भी एक दिन मरेगा। जिस विश्व में गणना करने पर मनुष्य की सत्ता नहीं के वरावर है, जब वह विश्व भी मरणशील है; तो तुच्छ प्राणी की चर्चा क्या। किस शक्ति पर मानव गर्व करे? उसे इन नश्वर पदार्थों का मोह छोड़कर, अपने गर्व को त्यागकर उस सर्वेश की शरण जाना चाहिये जो काल का भी काल है। उसकी उपेक्षा करके कोई सुरक्षित नहीं रह सकता। यदि इस कालाक्रान्त विश्व में कोई अभय दे सकता है, किसी की शरण से शान्ति मिल सकती है तो वह भगवान ही हैं। प्रदोष की यही शिक्षा है।

४८—एकादशी

एकादशी व्रत में कई मतभेद हैं। स्मार्तों के मतानुसार एकादशी व्रत का पारण द्वादशी में ही होना चाहिये। इसके लिये दशमीविद्धा एकादशी में व्रत करना भी पड़े तो वे कोई हर्ज नहीं मानते। वैष्णवों के मत से दशमीविद्धा एकादशी में व्रत नहीं करना चाहिये, फिर चाहे व्रत द्वादशी में करना पड़े और पारण त्रयोदशी में। ये दो प्रधान भेद हुए, और भी अनेकों भेद हैं। किसी भी दशा में जिस दिन एकादशी चौवन घड़ी से अधिक हो, व्रत नहीं किया जाता।

एकादशी के व्रत की विधि यह है कि दशमी को दोपहर को भोजन करके सायंकाल संकल्प करे कि मैं कल एकादशी व्रत करूंगा। सायंकाल भोजन न करे। एकादशी के दिन निर्जल व्रत रखे। रात्रि को सोवे नहीं। जागरण करते हुए भगवान का पूजन कीर्तन करना चाहिये। इस दिन तैल लगाना, बाल बनवाना, कपड़े धोना, दातौन करना, किसी भी वृक्ष की डाल या पत्ते तोड़ना निषिद्ध है। ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान की तथा तुलसी की पूजा करना चाहिये। एकादशी माहात्म्य का श्रवण करना चाहिये। वर्ष भर की चौबीसों एकादशियों के पृथक्-पृथक् नाम हैं और उनका पृथक् २ माहात्म्य भी है।

वैकुण्ठ से जब भगवान की आज्ञा लेकर एकादशी पृथ्वी पर आई तो उसके तेज से पाप भस्म होने लगे। संसार तो पाप-पुण्य दोनों से चलता है। एक भी न रहे तो प्रलय हो जावे। पापों ने भगवान से जाकर पुकार की। भगवान ने उन्हें अन्नों में निवास करने को कहा। एकादशी के दिन अन्न में पाप निवास करते हैं। उस दिन अन्न का

भोजन पाप भोजन है । जो लोग निर्जल निराहार व्रत करने में असमर्थ हैं, उन्हें जल पीकर और एक समय फलाहार करके व्रत करना चाहिये । इतने पर भी न रहा जाय तो फलाहार और दुग्धाहार करके रहना चाहिये । एकादशी के दिन अन्न का दान करना भी मना है । इस दिन पशुओं से काम भी नहीं लेना चाहिये । जहाँ तक हो सके भजन पूजन में समय देना चाहिये ।

पन्द्रह दिन में एक दिन का उपवास या अल्पाहार शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी है । भौतिकवादी भी एकादशी की इस महत्ता को स्वीकार करते हैं । पन्द्रह दिन में एक दिन सामूहिक रूप से भगवान की आराधना के लिये समय देना ही चाहिये । समाज में सात्विक भावों के प्रचार एवं पारस्परिक मिलन संगठन के लिये यह आवश्यक है । दैहिक और सामाजिक महत्वों से बड़ा एकादशी का आध्यात्मिक महत्व है । इस दिन प्रकृति में सत्वगुण प्रधान होता है, अतः मन सरलता से उपासना में ऊपर उठता है ।

४६-सोमवती अमावस्या

ऐसा बहुत कम होता है जब कि अमावस्या सोमवार को पड़ती है। जब कभी ऐसा होता है, उस दिन पर्व मनाया जाता है। सोमवती को दान, स्नान, जप, हवन आदि का अनन्त महत्व है। सोमवती अमावस्या के लगने के समय स्नान का सर्वोत्तम मुहूर्त होता है। स्नान ही इस दिन का विशेष कार्य है। सबसे अधिक महत्व गंगासागर स्नान का है, वह न हो सके तो सागर स्नान, वह भी न हो तो हरद्वार में गंगा स्नान और हरद्वार न मिल सके तो कहीं भी गंगास्नान करना चाहिये। गंगाजी पर न पहुँच सकें तो किसी भी नदी में, नदी न हो तो तालाब, नहर प्रभृति में और कुछ भी न हो तो घर पर ही स्नान करना चाहिये।

अमावस्या को चन्द्रदर्शन नहीं होते। उस दिन की चन्द्रकला भगवान शिव के मस्तक पर ही रहती है और जगत के प्राण का उसीके द्वारा सिंचन होता है। अमावस्या और सोमवार दोनों शंकरजी के दिन हैं। सोमवार चन्द्रमा का दिन है। जलतत्व से चन्द्रमा का अधिक सम्बन्ध है। जब अमावस्या सोमवार को पड़ती है तो शंकरजी की प्रधान तिथि, प्रधान दिन, चन्द्रमा का दिन, यह सब योग एकत्र हो जाते हैं। जलतत्व से चन्द्र का सम्बन्ध होने के कारण इन सब शुभ योगों का प्रभाव जल पर पड़ता है। स्नान के द्वारा मनुष्य उस प्रभाव से लाभ उठा सकता है।

सोम की अमावस्या के दिन स्नान करते समय मनुष्य भगवान शिव के भाल पर भूषित होनेवाली चन्द्रकला के पवित्र अमृत से सिंचित होता है। मानव के पापों को नष्ट करने के लिये भला इससे और

कौनसा पवित्र समय हो सकता है। इस समय का स्नान अनेक शारीरिक व्याधियों को नष्ट करनेवाला है। उससे प्राणों को शक्ति मिलती है।

सोमवार को भगवान शंकर के पूजन का महत्व है, अमावस्या को और भी अधिक है। सोमवती अमावस्या को पूजन का फल अनन्त होता है। स्नान करके विधिपूर्वक बिल्वपत्रादि से भगवान शिव का पूजन करना इस पर्व को मुक्ति एवं सम्पूर्ण कामनाओं का प्रदाता बताया गया है। यह पर्व त्रेता, सतयुग प्रभृति में बहुत कम आता था। लोग इसके लिये तरसते थे। इस दिन किया हुआ तर्पण पितरों को अपार तृप्ति देता है। कलि के पापी जीवों पर कृपा करके किसी ऋषि ने इसे कलियुग में बार बार आने का शाप दिया है। ऐसे सुयोग से भला कौन भाग्यहीन वंचित रहना चाहेगा।

५०—ग्रहण

सूर्यग्रहण के स्नान का महत्त्व प्रभास तीर्थ में और चन्द्रग्रहण का काशी में है। भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका से सकुटुम्ब सूर्यग्रहण का स्नान करने आये थे। प्रभास काठियावाड़ में है। कुरुक्षेत्र में भी यह स्नान बड़ी धूम से होता है। वैसे जो तीर्थ में नहीं पहुँच सकते वे कहीं भी गंगाजी में, किसी नदी में या घर पर स्नान कर सकते हैं।

स्नान ग्रहण के आरम्भ में करके जल में या जल के किनारे दान, पूजन, यज्ञ, जप प्रभृति किया जाता है। ग्रहण समाप्ति पर पुनः सचैल स्नान करके शुद्धि की जाती है। ग्रहण के समय श्वपच को और ग्रहण के अनन्तर ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। मन्त्र सिद्धि के लिये ग्रहण में पुरश्चरण करने की विधि है। इस समय का जप अनन्त फलदायी है।

सूर्यग्रहण से तीन प्रहर पूर्व एवं चन्द्रग्रहण से एक प्रहर पूर्व से ही सूतक माना जाता है। यह सूतक ग्रहणान्त तक रहता है। इस समय भोजन करना, जल पीना, मल-मूत्र त्याग करना, तैलादि लगाना, बाल बनवाना, दातौन करना, सोना, मैथुन करना, कोई भी कठोर परिश्रम का कार्य करना सब निषिद्ध है। यह ध्यान एवं भजन का समय है।

जल, कच्चा भोजन प्रभृति जो ग्रहण में रखा हो, अपवित्र एवं अग्राह्य माना जाता है। वस्त्र धोने से शुद्ध होते हैं। बर्तन मल लेने चाहिये। गर्भिणी स्त्री ग्रहण न देखे, अन्यथा गर्भस्थ शिशु अंगहीन होगा या गर्भपात हो जावेगा। ग्रहण कुछ राशि के लोगों के लिये लाभकर और कुछ के लिये हानिप्रद होता है। जिनके लिये हानिप्रद हो, उन राशियों के लोगों को भी ग्रहण नहीं देखना चाहिये।

सूर्य और चन्द्र का जगत की प्रत्येक वस्तु से सम्बन्ध है। प्रत्येक वस्तु का जलीय तत्व चन्द्रमा से और अग्नीय तत्व सूर्य से सम्बन्धित है। ग्रहण के समय सूर्य या चन्द्र के आवृत होने से इन वस्तुओं में बहुत से विकार होते हैं। इस विकार की दृष्टि से कुछ वस्तुएं निषिद्ध ठहराई गई हैं। उनके ग्रहण से शरीर में विकार हो सकता है। इसी प्रकार सूर्य का सम्बन्ध जठराग्नि से–नेत्र से–पित्त से–बुद्धि से है और चन्द्रमा को कफ से–मन से। ग्रहण के समय इनकी शक्ति क्षीण रहती है। ग्रहण के समय और उससे पूर्व के निषेध काल में भोजनादि निषिद्ध क्रियाओं के करने से शरीर के इन तत्वों में विकार होकर बड़े-बड़े रोगों के होने की सम्भावना रहती है, अतः मनुष्य की भलाई शास्त्रीय आदेशों को पालन करने में ही है। इस समय मन क्षीण शक्ति होता है, अतएव सरलता से भगवान की ओर लगाया जा सकता है।

———

५१—कुम्भ

देवता और दैत्यों ने मिलकर अमृत प्राप्ति के लिये क्षीरसागर का मन्थन किया अन्त में उसमें से भगवान धन्वन्तरि अमृतकलश लिये हुए प्रकट हुए। देवता और दैत्य दोनों उस घड़े को लेना चाहते थे। देवताओं की सलाह से इन्द्र के पुत्र जयन्त ने उस कुम्भ का हरण कर लिया। दैत्यों ने कलश छीनने के लिये पीछा किया। फलतः बारह दिन तक घोर देवासुर संग्राम होता रहा। इस बीच में अमृत-कुम्भ को सुरक्षित रखने के लिये चार बार पृथ्वी पर रखना पड़ा। यह अमृत कुम्भ जहाँ-जहाँ रखा गया, वहाँ उठाते और रखते समय कुछ अमृत के बिन्दु भी गिरे। इन्हीं स्थानों पर कुम्भ का पर्व पड़ता है। ये स्थान हैं हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक।

जयन्त जब अमृतकलश को लेकर भाग रहे थे तो उसे गिरने से चन्द्रमा ने, फूटने से सूर्य ने और चुराये जाने से बृहस्पतिजी ने बचाया था। अतः इन्हीं ग्रहों के संयोग से कुम्भ पर्व होता है। चारो स्थानों पर पृथक् पृथक् राशि में उपरोक्त ग्रहों के एकत्र होने से कुम्भ होता है। उनका माहात्म्य भी कुछ भिन्नता रखता है।

कुम्भ लगभग बारह वर्ष पर एक स्थान पर पड़ता है। छठवें वर्ष वहाँ की अर्धकुम्भी होती है। इस प्रकार कुम्भ और अर्धकुम्भियों को मिलाकर डेढ़ वर्ष के भीतर ही कहीं न कहीं की अर्ध कुम्भी या कुम्भ पड़ जाता है। स्नान, दान; एवं सन्तों के सत्संग का माहात्म्य है। इस समय पर्वकाल में विभिन्न साधु सम्प्रदाय क्रमवार बड़ी सजधज से स्नान करते हैं। इसे शाही निकलना कहा जाता है। साधुओं के स्नानानन्तर दूसरे लोग स्नान करते हैं।

कुम्भ के चारो स्थान भारत की विभिन्न चार दिशाओं में हैं। कुम्भ के समय प्रायः पूरे देश के लोग वहाँ एकत्र होते हैं। इतने बड़े देश में सब प्रान्तों के लोगों के सम्मिलन का यह शुभावसर होता है। एक दूसरे से मिलकर भाषा, विचार, रीति-रिवाज एवं दूसरी सामाजिक परिस्थितियों पर सलाह कर पाते हैं और परस्पर एक दूसरे से सहायता प्राप्त करते हैं। प्राचीन काल में जब रेल नहीं थी तो इस प्रकार का सम्मेलन कितना महत्व रखता होगा, यह बात कोई भी बुद्धिमान सोच सकता है। इसके अतिरिक्त दूर-दूर एवं नितान्त एकान्त में रहने वाले योगी एवं महात्माओं के एकत्र दर्शन सत्संग का यही अवसर होता है। समाज उनके गम्भीर मनन से लाभ उठा सकता है। तीर्थ स्नान और सन्त समागम से अधिक पुण्य भला और क्या होगा? साथ ही पर्व-महत्व भी रहता है।

५२—नवरात्र

नवरात्र वर्ष में दो बार पड़ता है, आश्विन में और चैत्र में। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक ये नवरात्र होते हैं। ये दोनों समय महाशक्ति की पूजा के हैं। श्रद्धालु और समर्थ व्यक्ति पूर्णतः दोनों नवरात्र में उपवास करते हैं। दुग्धाहार अथवा फलाहार करके भी लोग रहते हैं। जिनसे यह न हो सके, उन्हें एकाहार अथवा अल्प भोजन पर रहना चाहिये। इन दिनों दिन में सोना, राजस और तामस भोजन वर्जित है। ब्रह्मचर्यपूर्वक पृथ्वी या चौकी पर सोना चाहिये। संयम और सदाचार से रहना चाहिये। असत्य, दम्भ, कपट प्रभृति पापों से इन दिनों विशेषतः बचना चाहिये।

प्रतिपदा को प्रातः स्नान करके वरुण की पूजा करके कलश स्थापन करना चाहिये। भगवती के नवरूप माने गये हैं-शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदात्री। नवरात्र के नव दिन क्रमशः इनके हैं। प्रत्येक के ध्यान और पूजन की विधि पृथक् पृथक् है। दुर्गास्तव और पूजन विधि देवी भागवत में देखना चाहिये। स्थापित कलश पर उस दिन की देवी का आवाहन, पूजन, धूप-दीप प्रभृति से विधिवत करे। पूजन में लाल वस्त्र, लाल फूल और कुंकुमादि काम में लावे। जगन्माता अपने पशु पुत्रों के बलिदान से प्रसन्न नहीं होती। पशु-बलि की आसुरी पूजा से बचना चाहिये और बलिदान के लिये शास्त्रविधान के अनुसार कुष्माण्ड, ईख या शकूल की बलि देनी चाहिये। सम्भव हो तो नव दिन में दुर्गा सप्तशती के नवपाठ भी करे। नवमीविद्धा दशमी को पूजन करके यथाविधि देवी का विसर्जन होता है।

दुर्गा नवमी और गौरी जयन्ती के वर्णन में शक्ति पूजा के सम्बन्ध में बहुत कुछ कह चुका हूँ। उसे यहाँ दुहराने से कोई लाभ नहीं। यह स्मरण रखना चाहिये कि एक नवरात्र वर्षा के अन्त में और दूसरा गर्मी के प्रारम्भ में पड़ता है। भारत में यही दोनों समय दो प्रकार की ऋतुओं के संक्रमण के होते हैं। आश्विन और चैत्र बीमारी के महीने हैं। इनमें व्रत, उपवास, हवन-पूजन और ब्रह्मचर्यादि संयम प्राकृतिक दृष्टि से स्वास्थ्य के लिये बहुत उपयोगी हैं। नवरात्र का नव दिन का व्रत शरीर को शुद्ध कर देता है और हवन धूप से वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है। बीमारी के भय के समय महाशक्ति की उपासना मानसिक दृष्टि से भी प्रभावकारी है। भय के समय मन स्वभावतः माता की ओर आकर्षित होता है। अतः भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से नवरात्र की शक्ति उपासना भारतीय समाज के लिये लाभप्रद है।

५३-पितृपक्ष

आश्विन का पूरा कृष्णपक्ष पितृपक्ष होता है। इस पक्ष में पितरों का श्राद्ध करने से उनकी विशेष तृप्ति होती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने पितरों के लिये इस पक्ष में तर्पण एवं पिण्डदान अनिवार्य है। जो व्यक्ति जिस तिथि को मरा हो, उसका उसी तिथी को पितृपक्ष में श्राद्ध पड़ता है। जिनको मरण-तिथि ज्ञात न हो, उनका श्राद्ध चतुर्दशी को किया जाता है।

पूरे पक्ष भर भूमि पर या चौकी पर सोना चाहिये। ब्रह्मचर्य रखना चाहिये। मदिरा, मांस, मछली, प्याज, लसुन, गोभी, गाजर, नेनुआं (बड़ी तोरई) प्रभृति कई शाक खाने वर्जित हैं। बाल बनवाना, नख कटवाना, मैथुन, कपड़े धोबी से धुलवाना, कपड़े सिलवाना, उबटन लगाना जैसे कार्य भी वर्जित हैं। इनके करने से पितरों को कष्ट होता है, अतः इन सबसे बचना चाहिये। बच्चों, अत्यन्त वृद्धों और रोगियों के लिये आवश्यक हो तो नियमों में अपवाद किया जा सकता है।

यदि हो सके तो नित्य घी की कोई वस्तु नहीं तो तेल की जैसे शाक, बड़े आदि बनवाने चाहिये। नित्य नियम से पंचयज्ञ करके कौओं को भोजन देना चाहिये। यदि अपने पास सम्पत्ति हो तो पितरों के निमित्त ब्राह्मण भोजन नित्य कराना चाहिये। श्राद्ध या उससे सम्बन्धित कर्मों में तीन या अधिक से अधिक पाँच ब्राह्मणों से अधिक को भोजन न करावे। इन आमन्त्रित ब्राह्मणों में कोई ऐसा दोष न होना चाहिये जिसे मनुस्मृति में मनु ने निषिद्ध बताया है।

पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर करते हुए आश्विन कृष्णपक्ष में पितृलोक के निकट पहुँच जाती है। इस समय उसका पितृलोक से आकर्षण सम्पर्क होता है। पितरों के निमित्त जो कर्म इस पक्ष में किये जाते हैं, उनसे पितर सम्पर्क में रहने के कारण तृप्ति लाभ करते हैं। श्राद्ध विज्ञान के सम्बन्ध में मैं अपनी "पुराण-विज्ञान" नामक पुस्तक में विस्तार से लिख चुका हूँ। उसे यहाँ देने की आवश्यकता नहीं।

शास्त्रों में पुत्रोत्पादन की एकमात्र आवश्यकता ही यह बताई गई है कि पुत्र पिता एवं पितामहादिक पितरों को पिण्ड देगा। जो लोग अपने पितरों को तर्पण और पिण्ड दान नहीं करते, उनके पितर पितृलोक से पतित होकर नर्क में गिरते हैं। सबके पूर्वज पितृपक्ष में आशा लगाये बैठे रहते हैं कि हमारी संतति हमें जल एवं पिण्ड से तृप्त करेगी। अतएव प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह वेदविहित एवं परंपरागत प्रचलित इस धर्मकार्य को सांगोपांग सम्पन्न करे।

— —

५४-पुरुषोत्तम मास

पृथ्वी सूर्य की पूरी परिक्रमा ३६५ दिन और ६ घण्टे में कर लेती है। इसीसे सौर वर्ष ३६५ दिन का और प्रति चौथे वर्ष ३६६ दिन का होता है। चन्द्रमा ३० दिन में पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है और वह राशियों की दृष्टियों से १२ चक्कर ३६० दिन में करता है। अतएव चान्द्रवर्ष ३६० दिन का होता है। इस तरह दोनों वर्षों में प्रतिसाल ५ दिन का अन्तर पड़ता है और चौथे वर्ष वह अन्तर एक दिन और बढ़कर इक्कीस दिन का हो जाता है। अब यदि चान्द्रवर्ष का समन्वय सौरवर्ष से न किया जावे तो चान्द्र महीनों के अनुसार ऋतु निर्णय नहीं हो सकेगा। ज्येष्ठ कभी गर्मी में पड़ेगा और कभी जाड़े में। क्योंकि ऋतुओं का होना सूर्य पर निर्भर करता है। मुसलमान यह समन्वय नहीं करते, अतएव उनका मुहर्रम कभी जाड़े में और कभी गर्मी या वर्षा में पड़ा करता है।

चान्द्र मासों को छोड़ भी नहीं सकते। तिथियों का सम्बन्ध सूर्य से न होकर चन्द्रमा से है। चन्द्रमा के अनुसार महीने के दोनों पक्ष बनते हैं और चन्द्रमा की कलाओं के अनुसार कोई तिथि कभी घट जाती है, कभी बढ़ जाती है, कभी दो हो जाती है और कभी क्षय होती है। इस प्रकार सब व्रत, उत्सव और पर्व चान्द्र तिथियों से बनते हैं। चान्द्रमासों का ऋतुओं के अनुसार भी क्रम ठीक रहे, इसके लिये सौर एवं चान्द्रवर्षों का समन्वय हर दो वर्ष को छोड़कर तीसरे वर्ष चान्द्र वर्ष को तेरह महीने का मानकर कर लिया जाता है।

तीसरे या चौथे चान्द्रवर्ष में जब पूरे दो पक्ष के भीतर सूर्य की कोई संक्रान्ति नहीं पड़ती तो उस महीने को बढ़ा हुआ महीना माना

जाता है। इस संक्रान्ति विहीन महीने को पुरुषोत्तम मास या मलमास कहते हैं। मलमास में पहिले शुक्ल पक्ष और पीछे कृष्ण पक्ष होता है। शुद्ध महीने का कृष्ण पक्ष प्रथम और बीच में पूरे मलमास के दो पक्ष बीत जाने पर अन्त में उसका शुक्ल पक्ष माना जाता है। क्योंकि शुद्ध मास में सूर्य की संक्रान्ति पड़नी ही चाहिये।

तीन वर्ष के सब सौर मासों में से मैल रूप थोड़े थोड़े दिन एकत्र होकर चान्द्रमास का एक महीना बनाते हैं, इसीसे इसको मलमास कहा जाता है। व्रत, पूजन, यज्ञ, दान प्रभृति के द्वारा यह मास मनुष्य के समस्त मल का नाशक होने से भी मलमास कहा जाता है। इस महीने में प्रधान कर्तव्य भगवान की कथा, उनके नाम-गुण का कीर्तन, उनका पूजन और ध्यान होने से यह पुरुषोत्तम-मास है। सूर्य का सम्बन्ध सारे विश्व से है। चान्द्रमास के दो पक्षों में सूर्य की संक्रान्ति न पड़ना विश्व के लिये सुखकर नहीं होता। उसके विकारी प्रभाव से बचने एवं सूर्य की स्थिरता से सात्विकता प्राप्त करने के लिये इस महीने में संयमित एवं सात्विक कर्मों में लगे रहना आवश्यक है।

५५—विशेष योग

जितने पर्व के विवेचन अवतक दिये जा चुके हैं, केवल उतने ही पर्व होते हों ऐसी बात नहीं। पर्व तो वहुत से हैं और सबका वर्णन करने लगें तो ग्रन्थ बहुत बड़ा—वर्तमान से कई गुना अधिक हो जायगा। यहाँ केवल प्रसिद्ध और सार्वदेशिक पर्वों के सम्बन्ध में संक्षिप्ततः लिखा गया है। इनके अतिरिक्त ऐसे बहुत से पर्व हैं जो आजकल मनाये नहीं जाते। बहुत से ऐसे हैं जो देश के केवल कुछ थोड़े भाग में मनाये जाते हैं। शास्त्रीय पर्वों के अतिरिक्त बहुत से पर्व ऐसे हैं जो किसी समाज में प्रचलित हो गये हैं। साम्प्रदायिक पर्व भी बहुतेरे हैं। महा पुरुषों की जयन्तियां जैसे प्रताप जयंती प्रभृति और भी बच जाती हैं। इन सब पर्वों को एक व्यक्ति अन्वेषण करके जान ले, यह भी कम कठिन नहीं। इन सबका परिचय एवं विवरण पाना तो और भी कठिन है। इनको छोड़ देने के अतिरिक्त मेरे पास दूसरा कोई उपाय नहीं था।

उपरोक्त पर्वों के अतिरिक्त मैंने ऐसे पर्व भी छोड़ दिये हैं जिनमें पक्वान्न बनाकर खाने पीने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। उदाहरण के लिये श्रावण शुक्ल की हरियाली तीज, जो माताओं का उत्सव है, समझ लीजिये। इस दिन झूला झूलने का उत्सव होता है। हिंडोले का उत्सव कई स्थानों पर बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है। फिर भी मैंने ध्यान व्रत एवं पूजन प्रधान उत्सवों की ओर रखा है।

कुछ नित्य व्रत होते हैं और वे सकाम निष्काम दोनों प्रकार से किये जाते हैं। रविवार का व्रत सूर्य के निमित्त लवणहीन एकाहारी

रहकर, सोमवार का व्रत चन्द्रमा के निमित्त, गुरुवार का व्रत, शनिवार का व्रत शनि ग्रह की शान्ति के लिये, मंगलवार और शनिवार का व्रत हनुमान जी के निमित्त, इस प्रकार दिनों के ये नित्य व्रत होते हैं। तिथियों में परिवा, पंचमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या सब व्रतों के भीतर आ जाती हैं। तृतीया, चतुर्थी, षष्ठी, दशमी भी बहुधा व्रत मानी जाती हैं। शास्त्रों में द्वादशी व्रत का माहात्म्य एकादशी की भाँति ही माना गया है। पूर्णिमा, अमावस्या के व्रत तो इस समय भी बहुत से लोग करते हैं। शास्त्रों में इन सब व्रतों की विधियाँ हैं, इनके प्रति महीने में पृथक् पृथक् नाम हैं। व्रत विधियों में भी बहुत अन्तर है। विस्तार भय से सबको यहाँ नहीं लिखा जा सकता। जिन्हें आवश्यकता हो वे बृहन्नारदीय पुराण, निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु, स्कन्दपुराण प्रभृति शास्त्रीय ग्रन्थों में देख सकते हैं। कुछ स्मृतियों में भी इनका वर्णन आता है।

नित्य पर्वों के अतिरिक्त बहुत से नैमित्तिक पर्व होते हैं। किसीः निमित्त विशेष से उनका उत्सव पड़ता है। उदाहरण के लिये वारुणी पर्व को ले लीजिये। कुछ विशेष ग्रहों के संयोग से यह पर्व पड़ता है। इसी प्रकार ग्रहों की स्थिति के अनुसार बहुत से पर्व पड़ते हैं। महाभारत काल में वर्ष में एक महीने का क्षय हो गया था। इस प्रकार नैमित्तिक पर्वों का कोई निश्चित काल नहीं होता। कोई कोई तो कई युगों के पश्चात् आते हैं।

थोड़े से नित्य पर्व भी हैं जो नैमित्तिकों की भाँति एक बड़े समय के अन्तर से पड़ते हैं। शताब्दी का प्रथम दिवस, युग का प्रथम दिवस, युग के नवीन पाद का आरम्भ दिवस, कल्प का प्रारम्भिक दिवस, युगान्त दिवस या युग संधि का प्रथम दिवस, वर्ष का प्रथम दिवस। इन सबमें उस काल के अधिष्ठाता का पूजन, यज्ञ और शान्तिपूर्वक

आगामी काल समाप्त होने के लिये जगदीश्वर से सामूहिक प्रार्थना प्रभृति होती है।

कुछ आचार्यों के मत से राजा के मरने के समय और राजा के अभिषेक के समय भी प्रजा को उत्सव मनाकर भगवान की पूजा करनी चाहिये। इन सार्वजनिक पर्वों के अतिरिक्त अपने सम्प्रदायाचार्य की जयन्ती, उनकी निधन तिथि, उनको सिद्धावस्था प्राप्त करने की तिथि और दूसरी साम्प्रदायिक उत्सव तिथियाँ भी पर्व मानी जाती हैं।

कुछ वैयक्तिक पर्व भी होते हैं। ये पूरे परिवार या एक व्यक्ति के लिये होते हैं। चूड़ाकर्म, उपनयन, शिक्षारम्भ, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, गुरुदीक्षा, मरणसंस्कार, जन्मगांठ, पूर्वजों की स्मरण तिथियाँ, गुरु की जन्मगांठ प्रभृति ऐसी ही वैयक्तिक घड़ियाँ हैं। इनकी विधियाँ पृथक्-पृथक् होती हैं और कुलाचार्य या कुल पुरोहित से ज्ञात हो सकती हैं।

परिवार में किसी सम्बन्धी का कोई वैयक्तिक उत्सव पड़ने पर वह उससे सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के लिये सामान्यतया होता है। सामाजिक या साम्प्रदायिक उत्सव समाज एवं सम्प्रदाय के नियमानुसार होंगे। राष्ट्रीय पर्व भी होते हैं और राष्ट्र की अवस्थानुसार उनमें परिवर्तन होता रहता है। किसी देश की प्राकृतिक स्थिति भी पर्वों का कारण बनती है। पश्चिम के सर्द देश सूर्य के स्वागत में बड़ा दिन मनाते हैं। इस प्रकार विशेष पर्वों की कोई निश्चित संख्या करना बहुत कठिन है। जो शास्त्रीय पर्व हैं, विशेष कर नित्य पर्व, उनकी एक तालिका दी जा रही है।

॥ समाप्त ॥

पर्वसूची

यह सूची बृहन्नारदीय पुराण के आधार पर प्रस्तुत की गई है। इसमें केवल नित्य पर्वों का वर्णन है। तिथि क्रम से पर्वों की सूची पुराण के अनुसार बनाई गई है। एकादशी प्रभृति में एक ही देवता के जो विभिन्न नाम आते हैं, वे योंही नहीं आये हैं। उन नामों के अनुकूल रूप में उस देवता की उपासना उस पर्व में हो, इसीलिये नामों में वैभिन्य है। शुक्ल पक्ष में जिस तिथि को जो पर्व पड़ता है, कृष्ण पक्ष में भी उस तिथि को प्रायः वही पर्व माना जाता है। दोनों की व्रत-पूजन प्रभृति विधियाँ समान होती हैं। इस कारण केवल शुक्ल पक्ष के व्रतों की सूची बनाई जाती है। जहाँ कृष्ण पक्ष में शुक्ल पक्ष से कोई पृथक् पर्व आता है, उसको सूची में दे दिया गया है।

प्रतिपदा के पर्व

चैत्र शुक्ल—विद्याव्रत, अग्नि में ब्रह्मा के निमित्त हवन। इसी दिन सृष्टि का प्रारम्भ हुआ।

वैशाख ,,—ब्रह्मा और विष्णु का पूजन।

ज्येष्ठ ,,—सूर्योदय के समय लाल कनेर का पूजन। उसे रक्त सूत्र से लपेटे।

आषाढ़ ,,—शिवार्चन।

श्रावण शुक्ल—शिवार्चन, यह लक्ष्मी और बुद्धि-प्रद है।

भाद्र ,,—महत्तम व्रत और मौन व्रत। शिवार्चन। १६ विप्रों को १६ फल दान।

आश्विन कृष्ण—अशोक व्रत, अशोक वृक्ष की पूजा और उसकी मूर्ति का दान।

आश्विन शुक्ल—नवरात्रारम्भ, देवी पूजन।

कार्तिक ,,—अन्नकूट, गोवर्धन पूजन।

मार्गशीर्ष ,,—धनव्रत, रात्रि में विष्णु पूजन, हवन, दो लाल वस्त्र का दान।

पौष ,,—एकाहारी रहकर सूर्यार्चन।

माघ ,,—अग्निपूजन।

फाल्गुन ,,—दिगम्बर शिव का अभिषेक।

द्वितीया के पर्व*
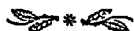
चैत्र शुक्ल—सावित्री के साथ ब्रह्मा का पूजन एवं हविष्यान्न का नैवेद्य। नेत्र व्रत-रजत नेत्र का दान।

वैशाख ,,—घड़े पर सप्त धान्य रखकर उसपर भगवान विष्णु का पूजन।

ज्येष्ठ ,,—चतुर्मुख रूप में सूर्य-पूजन।

आषाढ़ ,,—रथयात्रा।

---

* नोट—द्वितीया के देवता अग्नि हैं। उन्हीं का उपरोक्त विभिन्न रूपों में पूजन होता है।

श्रावण शुक्ल—यह ब्रह्मशयनी द्वितीया है, शैय्यास्थ ब्रह्मा का पूजन।
भाद्र „ —इन्द्र—पूजन।
आश्विन „ —दान देने का माहात्म्य है।
कार्तिक „ —यमद्वितीया।
मार्गशीर्ष „ —श्राद्ध एवं पितृपूजन।
पौष „ —बालेन्दु-पूजन, गो शृंगोदक से मार्जन।
माघ „ —लाल फूल से सूर्य-पूजन। गेहूं भरे ताम्रपात्र का दान।
फाल्गुन„—श्वेत पुष्प से शिवार्चन एवं पुष्प विमान बनाकर शिवपूजन।

तृतीया के पर्व*

चैत्र शुक्ल—गौरी जयन्ती, यह व्रत स्त्रियों के लिये है। गौरी पूजन।
वैशाख „—अक्षय तृतीया, इसी दिन त्रेता युग का आरम्भ हुआ। सत्तू भोजन, गंगा स्नान, नारायण पूजन।
ज्येष्ठ „—रम्भा तृतीया, सपत्नीक विप्र का पूजन स्त्रियाँ करती हैं।
आषाढ़ „—लक्ष्मी नारायण का पूजन स्त्रियों के लिये व्रत विधान।

---

* नोट—तृतीया की अधिष्ठात्री देवी गिरिजा हैं। यह सब व्रत केवल स्त्रियों के लिये हैं। सब में पार्वती की विभिन्न रूपों में उपासना एवं पूजा होती है। देवी पूजन के अतिरिक्त इन सबमें विप्र-पूजा, दान, होम और चतुर्थी को देवी का विसर्जन होता है। सात्विक जीवन और ब्रह्मचर्यादि तो सभी पर्वों में समान रूप से रखने आवश्यक होते ही हैं।

श्रावण शुक्ल—स्वर्ण गौरी व्रत, हरियाली तीज, यह भी स्त्रियों का व्रत है।
भाद्र ,,—हरितालिका, यह भी स्त्रियों का व्रत है। यदि इस दिन हस्त नक्षत्र हो तो हस्त गौरी व्रत होगा। कोटीश्वरी या लक्षेश्वरी व्रत भी होता है, जिसमें करोड़ या लक्ष चावलों को पकाकर उनकी मूर्ति बनाकर गौरी पूजन सौभाग्यवती स्त्रियाँ करती हैं।
आश्विन ,,—बृहद्गौरी व्रत।
कार्तिक ,,—विष्णुगौरी व्रत।
मार्गशीर्ष ,,—हरगौरी व्रत।
पौष ,,—ब्रह्मगौरी व्रत।
माघ ,,—सौभाग्यसुन्दरी पूजन।
फाल्गुन ,,—कुल सौख्यदा पूजन।

चतुर्थी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—वासुदेव स्वरूप गणेश का पूजन।
वैशाख ,,—संकर्षणस्वरूप गणेश का पूजन, शंख-दान।
ज्येष्ठ ,,—प्रद्युम्नस्वरूप गणेश का पूजन, फल फूल दान और सतीव्रत।
आषाढ़ ,,—अनिरुद्ध स्वरूप गणेश का पूजन, सन्यासी को कमंडलु-दान, रथव्रत।

---

*नोट—चतुर्थी के अधिष्ठातृ देवता गणेश जी हैं। दोनों पक्ष की सभी चतुर्थियों में उन्हीं का पूजन होता है। रविवार और मंगलवार को पड़ने वाली चतुर्थी विशेष फलप्रद मानी जाती है।

श्रावण शुक्ल—दूर्वागणपति व्रत, चन्द्रोदय होने पर गणेश पूजन।
भाद्र कृष्ण—बहुला धेनु का पूजन।
भाद्र शुक्ल—सिद्ध विनायक व्रत, गणेश चतुर्थी, चन्द्रदर्शन निषेध।
आश्विन ,—पुरुष सूक्त से कपर्दीश-विनायक पूजन।
कार्तिक कृष्ण—करक व्रत, केवल स्त्रियों के लिये। चन्द्रोदय होने पर गणेश पूजन जिसमें दस पुओं का नैवेद्य होना चाहिये। तदनन्तर व्रत-पारण।
कार्तिक शुक्ल—प्रातः धेनु शृंगजल का पान, नाग पूजन।
मार्गशीर्ष ,,—मूषक मूर्ति निर्मित रथ पर गणेश जी का पूजन, वर व्रत।
पौष ,,—गणेश पूजन करके एक ब्राह्मण को लड्डू खिलाना चाहिये।
माघ कृष्ण—संकष्ट व्रत, चन्द्रोदय होने पर मिट्टी की बनी गणेश मूर्ति का पूजन।
माघ शुक्ल—गौरी व्रत, ढुंढि व्रत, कुंडी व्रत, ललिता व्रत, शान्ति व्रत, ये सब कई व्रत हैं।
फाल्गुन ,,—ढुण्ढिराज व्रत, तिल पृष्ट से ब्राह्मण भोजन करावे।

पंचमी के पर्व

चैत्र शुक्ल—मत्स्य जयन्ती, श्री पंचमी, पृथ्वी व्रत, चन्द्र व्रत, हयग्रीव व्रत।
वैशाख ,,—शेष पूजन।
ज्येष्ठ ,,—पितृपूजन।
आषाढ़ ,,—ग्राम के बाहर पंचरंगी ध्वजा जो कमलांकित हो गाड़ कर वायु परीक्षा। वायुपूजन, निराहार एवं भूमिशयन। शुभाशुभ वर्ष भर का जानने का शकुन है जो स्वप्न द्वारा ज्ञात होता है।

श्रावण कृष्ण—अन्नव्रत, संध्या में शिवपूजन और अन्नदान।

श्रावण शुक्ल—नागपंचमी।

भाद्र कृष्ण—नाग के लिये क्षीर-दान।

भाद्र शुक्ल—ऋषिपंचमी, सप्तर्षिपूजन एवं उनके निमित्त हवन।

आश्विन ,,—उपांग ललिताव्रत, ललिता देवी का पूजन।

कार्तिक ,,—जयाव्रत, जया देवी का पूजन और एक ब्राह्मण को भोजन-दान।

मार्गशीर्ष ,,—नागपूजन।

पौष ,,—पितृ एवं नागपूजन।

माघ ,,—श्री पंचमी, वसंत पंचमी।

फाल्गुन ,,—पितृपूजन।

षष्ठी के पर्व

चैत्र शुक्ल—कुमार व्रत, षड्मुख कुमार कार्तिक का पूजन। यह व्रत पुत्रदा है।

वैशाख ,,—इसमें भी उपरोक्त व्रत एवं विधान है।

ज्येष्ठ ,,—सूर्यपूजन।

आषाढ़ ,,—स्कन्द व्रत।

श्रावण ,,—शरजन्माव्रत और कार्तिक पूजन।

भाद्र कृष्ण—ललिताव्रत, यह केवल स्त्रियों के लिये है। बालू की पाँच ललिता देवी की पिण्डी बनाकर, बांस के पात्र में रख कर, स्वयं श्वेत वस्त्र पहिन कर पूजन करें। रात्रि जागरण भी होगा। सप्तमी को देवी विसर्जन।

भाद्र शुक्ल—चन्दन षष्ठी, देवी पूजन।

आश्विन ,,—कात्यायनी व्रत, कुमारी कन्या उत्तम वर प्राप्ति के लिये बालू की कात्यायनी मूर्ति बनाकर पूजन करे। गोप कुमारियों ने श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये यह व्रत किया था।

कार्तिक ,,—इस दिन कुमार कार्तिक का व्याह देवसेना के साथ हुआ। अग्नि की पूजा और सपत्नीक कुमार कार्तिक की पूजा होती है।

मार्गशीर्ष ,,—इस दिन स्कन्द ने तारकासुर को मारा अतः स्कन्द पूजन। यदि इस तिथि को रविवार पड़े तो भगवान विष्णु के आविर्भाव का पर्व होगा।

माघ ,,—वारुणी पर्व, वरुण की जल में पूजा।

फाल्गुन ,,—मिट्टी के बने शिवलिंग की पूजा।

सप्तमी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—रथ, सारथी प्रभृति के साथ सूर्यनारायण का सांगोपांग पूजन।

वैशाख ,,—कमल व्रत, निम्ब व्रत–जिसमें नीम के पत्तों से सूर्यपूजन और नीम के पत्ते खाना तथा भूमिशयन होता है।

---

* नोट—सप्तमी के अधिष्ठाता देवता सूर्य हैं। इस दिन हवन और सूर्य पूजन सभी महीनों में होना चाहिये। यह पर्व सम्यक् उपासना से सूर्य सायुज्य प्रदाता माना गया है।

शर्करा सप्तमी, अमृत पीते हुए सूर्य के हाथ से कुछ विन्दु गिर पड़े, उन्हीं से शक्कर (ईख) उत्पन्न हुई, अतएव शक्कर का दान करे और स्वयं भोजन भी करे। इसी तिथि में अपना आसन वहाने से रुष्ट होकर महर्षि जह्नु ने गंगा को पी लिया और भगीरथ के स्तुति करने पर पुनः कर्ण द्वारा निकाल दिया। तभी से गंगा को जाह्नवी कहते हैं। इस दिन गंगापूजन भी होगा।

ज्येष्ठ शुक्ल—इस दिन इन्द्र सूर्य होते हैं, अतः इन्द्रपूजन।

आषाढ़ ,,—इस दिन विवस्वान सूर्य होते हैं, उनका पूजन होगा।

श्रावण ,,—अव्यंग व्रत, वस्त्रदान करना चाहिये।

भाद्र ,,—अमुक्ताभरण व्रत, चन्द्रमा और शिव का पूजन।

आश्विन ,,—शुभ सप्तमी, कपिला-पूजन।

कार्तिक ,,—शाक सप्तमी, शाक दान और शाकाहार।

मार्गशीर्ष ,,—मित्रव्रत, इस दिन कश्यप और अदिति से सूर्य की उत्पत्ति हुई, सूर्यपूजन।

पौष ,,—अभय व्रत, मार्तण्ड व्रत, सूर्यपूजन और मोदक-दान।

माघ कृष्ण—सर्वाप्ति व्रत, सूर्य के बिम्ब की पूजा और रात्रिजागरण।

माघ शुक्ल—अचला सप्तमी, त्रिलोचन जयन्ती, रथ सप्तमी, पुत्र सप्तमी।

फाल्गुन ,,—अर्कपुत्र व्रत, अर्क के पत्ते से सूर्य पूजन। यज्ञव्रत, यज्ञजयन्ती। इस दिन यज्ञावतार हुआ था।

———

अष्टमी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—महाष्टमी, इसी दिन भवानी की उत्पत्ति हुई । अशोक कलिका प्राशन और देवी पूजन ।

वैशाख ,,—अपराजिता पूजन, देवी को उड़द जिसमें भिगाई हो उस जल से स्नान करावे ।

ज्येष्ठ ,,—शिव और देवी की पूजा ।

आषाढ़ ,,—बासी जल से स्वयं स्नान करके देवी को भी बासी जल से स्नान कराकर पूजन करे ।

श्रावण ,,—दूध से देवी को स्नान कराकर पूजा करे ।

भाद्र कृष्ण—दशाफल व्रत और जन्माष्टमी ।

भाद्र शुक्ल—राधाष्टमी, दूर्वाष्टमी, सन्तान के लिये दूर्वा पूजन ।

आश्विन ,,—विप्रमहाष्टमी, दुर्गापूजन ।

कार्तिक कृष्ण—करक व्रत, शिवार्चन, उदित होते चन्द्रमा को अर्घ्य-दान ।

कार्तिक शुक्ल—गोपाष्टमी ।

मार्गशीर्ष कृष्ण—दूर्वा से बनाये अनघ और अनघा की पूजा ।

मार्गशीर्ष शुक्ल—भैरवाष्टमी ।

पौष कृष्ण—श्राद्धाष्टक, पितृतर्पण ।

---

* नोट—अष्टमी की अधिष्ठात्री भगवती हैं और उन्हीं की रूप भेद से पूजा होती है ।

पौष शुक्ल—शिव पूजन।

माघ कृष्ण—भद्रकाली पूजन।

माघ शुक्ल—भीष्माष्टमी।

फाल्गुन कृष्ण—भीमादेवी का पूजन।

फाल्गुन शुक्ल—शिवपार्वती की पूजा।

चैत्र कृष्ण—शीतलाष्टमी।

नवमी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—रामनवमी, इसी दिन ब्रह्मा ने भद्रकाली का अभिषेक किया था, अतएव भद्रकाली का भी पूजन होगा।

वैशाख ,,—चण्डिका पूजन।

ज्येष्ठ ,,—उमाव्रत, उमा-पूजन।

आषाढ़ ,,—दोनों पक्ष की नौमी की रात्रि में ऐरावत पर विराजमान ऐन्द्री शक्ति की पूजा होगी।

श्रावण ,,—कुमारी चण्डिका पूजन। रात्रि में भोजन करे।

भाद्र ,,—दुर्गापूजन।

आश्विन ,,—महानवमी, महाकाली पूजन।

कार्तिक ,,—अक्षयनवमी, पीपल की जड़ में देवता एवं पितरों के लिये तर्पण।

---

* नोट—नवमी की अधिष्ठात्री भी भगवती हैं। उन्हीं की अनेक रूपों में पूजा होती है।

मार्गशीर्ष ,,—नन्दिनी नवमी, जगदम्बा पूजन।
पौष ,,—एकाहारी रहकर महामाया पूजन।
माघ ,,—महानन्दानवमी, स्नान-दान-हवन-जप प्रभृति।
फाल्गुन ,,—आनन्दा नवमी, उपवास करे और नन्दा देवी का पूजन।

दशमी के पर्व
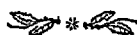
चैत्र शुक्ल—धर्मराज व्रत, धर्मराज पूजन और चतुर्दश ब्राह्मण भोजन कराना।
वैशाख ,,—विष्णु पूजन।
ज्येष्ठ ,,—गंगादशहरा।
आषाढ़ ,,—स्नान, जप, दान, हवन आदि का माहात्म्य है।
श्रावण शुक्ल—व्रत और शिवार्चन।
भाद्र ,,—दशावतार व्रत, दशावतारों का पूजन।
आश्विन ,,—विजयादशमी, आताओं के सहित रघुनाथजी का पूजन।
कार्त्तिक ,,—सार्वभौमव्रत, पापनाशार्थ रात्रि में दशों दिशाओं में दिग्पालों को पूओं की बलि देवे।
मार्गशीर्ष ,,—आरोग्य व्रत, दस विप्रों का पूजन और उनका चरणोदक पीना चाहिये।
पौष ,,—एकाहारी रहकर विश्वेदेवा देवताओं का पूजन।
माघ ,,—दसों आंगिरस देवताओं का पूजन।
फाल्गुन ,,—चौदह यम का पूजन।

एकादशी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—कामदा, वासुदेवार्चन।

वैशाख कृष्ण—वरूथिनी, मधुसूदन पूजन।

वैशाख शुक्ल—मोहिनी, पुरुषोत्तम पूजन।

ज्येष्ठ कृष्ण—अपरा, त्रिविक्रम पूजन।

ज्येष्ठ शुक्ल—निर्जला, हृषीकेशार्चन।

आषाढ़ कृष्ण—योगिनी, नारायणार्चन।

आषाढ़ शुक्ल—देवशयनी, शेषशायी आराधन।

श्रावण कृष्ण—कामिका, श्रीधरार्चन।

श्रावण शुक्ल—पवित्रा, जनार्दन पूजन।

भाद्र कृष्ण—अजा, उपेन्द्र पूजन।

भाद्र शुक्ल—पद्मा, लक्ष्मीनारायणार्चन।

आश्विन कृष्ण—इन्दिरा, पद्मनाभ पूजन। पितरों के लिये शालग्राम

---

* नोट—प्रत्येक एकादशियों के अलग अलग नाम हैं, जो ऊपर दिये गये हैं। नामानुसार उनका माहात्म्य भी है। एकादशी के अधिष्ठाता भगवान विष्णु हैं। अलग नाम एवं नामानुकूल रूप में उनकी पूजा होती है।

शिला के सम्मुख श्राद्ध करे।

आश्विन शुक्ल—पाशांकुशा, विष्णु पूजन।

कार्तिक कृष्ण—रम्भा, केशवार्चन।

कार्तिक शुक्ल—प्रबोधिनी, गदादामोदर पूजन।

मार्गशीर्ष कृष्ण—उत्पन्ना, श्रीकृष्णार्चन।

मार्गशीर्ष शुक्ल—मोक्षदा, अनन्तार्चन।

पौष कृष्ण—सफला, अच्युत पूजन।

पौष शुक्ल—पुत्रदा, चक्री पूजन।

माघ कृष्ण—षट्तिला, वैकुण्ठ पूजन।

माघ शुक्ल—जया, श्रीपति पूजन।

फाल्गुन कृष्ण—विजया, योगीशार्चन।

फाल्गुन शुक्ल—आमलकी, पुण्डरीकाक्ष पूजन।

चैत्र कृष्ण—पापमोचिनी, श्रीहरि पूजन।

द्वादशी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—मदन व्रत, चावल भरे कलश पर काम पूजन। भर्तृ द्वादशी, लक्ष्मीनारायण पूजन।

वैशाख ,,—उपवास, माधव पूजन।

ज्येष्ठ ,,—त्रिविक्रम व्रत और उनका पूजन।

आषाढ़ ,,—दस ब्राह्मणों को भोजन करावे।

श्रावण ,,—श्रीधर व्रत और विष्णु पूजन।

भाद्र ,,—वामन व्रत, वामन भगवान की पूजा।

---

* नोट—द्वादशी के भी अधिष्ठाता भगवान विष्णु हैं। उन्हीं का पूजन होता है। यदि एकादशी सूर्योदय से पूर्व निवृत्त हो जावे तो त्रिस्पृशा द्वादशी होती है। इसमें गोविन्द पूजन होगा। यदि एकादशी दशमी से अरुणोदय विद्धा हुई हो तो द्वादशी में वासुदेव पूजन होगा। यदि एकादशी को उदयकाल में दशमी स्पर्श करे तो वंजुलिका द्वादशी होगी। इसे महाद्वादशी कहते हैं। इसमें संकर्षण का पूजन होगा। यदि अमावस्या से रात्रि बढ़ती हो तो शुक्लपक्ष की द्वादशी पक्षवर्धिनी द्वादशी होगी। इसमें प्रद्युम्न की पूजा होती है। शुक्लपक्ष की द्वादशी मघा युक्त हो तो जया और श्रवण नक्षत्र युक्त हो तो विजया कही जाती है। जया में अनिरुद्ध और विजया में गदाधर की पूजा होती है। यदि शुक्लपक्ष में प्राजापत्यर्क्ष युक्त द्वादशी हो तो वामनजयन्ती और यदि जीवभान्वित योग युक्त हो तो अपराजिता द्वादशी होगी। पहिली में वामन की और दूसरी में नारायण की पूजा होगी। आषाढ़ शुक्ल पक्ष में मैत्रभ योग युक्त द्वादशी, भाद्र शुक्ल में श्रवण नक्षत्र युक्त और कार्तिक शुक्ल में भी श्रवण नक्षत्र युक्त होने पर एकादशी और द्वादशी दोनों के व्रत करने चाहिये।

आश्विन ,,—पद्मनाभ पूजन ।
कार्तिक कृष्ण—गोवत्स द्वादशी, बछड़े युक्त गाय की मूर्ति का पूजन।
कार्तिक शुक्ल—दामोदर पूजन । नीराजन व्रत, सूर्य-शंकर-गौरी-देवता-पितर गौ आदि की आरती करे ।
मार्गशीर्ष ,,—साध्य व्रत, बारहो साध्य देवों का पूजन ।
पौष कृष्ण—रूप व्रत ।
पौष शुक्ल—सुजन्मा व्रत, गोश्रृंगोदक पान ।
माघ ,,—विष्णु भगवान का ध्यान और पूजन ।
फाल्गुन ,,—विष्णु पूजन ।

त्रयोदशी के पर्व*

चैत्र शुक्ल—चन्दन के बने कामदेव की मूर्ति का पूजन और उसे पङ्खा करना । यदि इस दिन शनिवार हो तो महावारुणी पर्व होगा, गंगास्नान करे ।
वैशाख ,,—कामदेव व्रत ।
ज्येष्ठ ,,—दौर्भाग्य शमन व्रत, श्वेत मन्दार-अर्क और लाल कनैर का पूजन ।
आषाढ़ ,,—एकाहारी रहकर उमामहेश्वर का पूजन ।
श्रावण ,,—रति काम व्रत, यह स्त्रियों के लिये वैधव्यनिवारक है । गिरिजाशंकर का पूजन करना चाहिये ।
भाद्र ,,—गोत्रिरात्रि व्रत, तीन दिन तक लक्ष्मीनारायण पूजन ।
आश्विन ,,—अशोक व्रत, स्वर्ण निर्मित अशोक वृक्ष की मूर्ति का तीन रात्रियों में पूजन करना चाहिये । केवल स्त्रियों के लिये यह व्रत है ।

---

* नोट—पौष, माघ और फाल्गुन में भी शिव पूजन ही होगा ।

कार्तिक कृष्ण—एकाहारी रहे, यम दीप दान।

कार्तिक शुक्ल—एकाहारी रहकर शंकर जी के लिये सौ या हजार दीपदान करे। शिव सहस्र नाम से शंकर पूजन करे।

मार्गशीर्ष ,,—काम पूजन।

चतुर्दशी के पर्व

चैत्र शुक्ल—शिवार्चन, सन्ध्या में राधाकृष्ण की पूजा और तदनन्तर शिवलिंग पूजा। इस दिन व्रत रखे। यही कार्य सभी महीने की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को करने होंगे।

वैशाख ,,—नृसिंह व्रत, सन्ध्या में नृसिंह पूजन। इसी दिन ॐकारेश्वरयात्रा होती है।

ज्येष्ठ ,,—रुद्र व्रत, सन्ध्या समय धेनु दान।

आषाढ़ शुक्ल—शिवपूजन।

श्रावण ,,—पवित्रारोपण।

भाद्र ,,—अनन्त व्रत, कदली व्रत, रम्भार्चन।

आश्विन कृष्ण—गया श्राद्ध, काक बलि।

आश्विन शुक्ल—धर्मराज पूजन।

कार्तिक ,,—धर्मराज पूजन, प्रदोषकाल में दीप दान। ब्रह्मकूर्च व्रत, पञ्चगव्य पान। पापाण व्रत, गौरी पूजन।

मार्गशीर्ष ,,—एकाहारी रहकर वृषभ पूजन, सोम महेश्वर पूजन।

पौष ,,—विरूपाक्ष व्रत, शिव पूजन।

माघ ,,—यम तर्पण।

फाल्गुन कृष्ण—महाशिवरात्रि।

फाल्गुन शुक्ल—दुर्गा पूजन।

चैत्र कृष्ण—उपवास और केदारोदक पान।

अमावस्या के पर्व*

ज्येष्ठ—सावित्री व्रत।

भाद्रपद—कुशोत्पाटन।

कार्तिक—दीपमालिका।

पूर्णिमा के पर्व*

चैत्र—चन्द्रमा की तुष्टि के लिये कुम्भोदक दान।

वैशाख—धर्मराज व्रत।

ज्येष्ठ—वट सावित्री व्रत, वट पूजन।

आषाढ़—गोपी व्रत, विष्णु पूजन, कोकिला व्रत।

श्रावण—उपाकरण, श्रावणी, रक्षाबन्धन।

भाद्रपद—उमामहेश्वर व्रत, शक्र व्रत।

आश्विन—कोजागर व्रत, लक्ष्मीपूजन, दीपदान लक्ष्मी के लिये।

कार्तिक—कुमार कार्तिक के दर्शन और पूजन एवं कृत्तिका पूजन, वृषोत्सर्ग व्रत।

मार्गशीर्ष—श्रीहरि, इन्द्र और चन्द्रमा का पूजन।

पौष—शिव पूजन।

माघ—शिव पूजन, दान का महत्व है।

फाल्गुन—होलिकादहन।

---

* नोट—शेष सभी महीनों की अमावस्याओं में पितृपूजन, तर्पण और श्राद्ध होता है।

* नोट—जहाँ भी व्रत लिखा गया है, वहाँ उपवास करना होगा और जिस देवता का व्रत होगा, उसीका पूजन भी।

* समाप्त *

व्रतकथा व माहात्म्य

आप व्रतकथा सम्बन्धी पुस्तकों को खरीदना चाहते हों तो भार्गव पुस्तकालय से प्रकाशित पुस्तकों को खरीदिये। इन पुस्तकों में व्रतविधान, पूजाविधि, पूजन सामग्री 'उद्यापनविधि, कथा वगैरह' सभी विषय दे दिये गये हैं और हिन्दी टीका सभी के समझने योग्य सुन्दर ललित भाषा में हुई हैं।

अनन्तव्रत कथा भाषा टीका	=)
अक्षय नवमी भाषा टीका	-)॥
महालक्ष्मी व्रत कथा भाषा टीका	=)
सोमवारी व्रत कथा भाषा टीका	≡)
हरतालिका व्रत कथा भाषा टीका	=)
बहुलाचतुर्थी व्रत कथा भाषा टीका	-)
,, मूल	)॥
कृष्णाजन्माष्टमी कथा भाषा टीका	≡)
ऋषिपंचमी कथा भाषा टीका	=)
चित्रगुप्त कथा भाषा टीका	=)
पुरुषोत्तम (मलमास) माहात्म्य भाषा टीका	१)

श्रावणमास माहात्म्य भाषा टीका	१)
अगहनमास माहात्म्य भाषा टीका	१।)
कार्तिक माहात्म्य भाषा टीका	१)
माघ माहात्म्य भाषा टीका	१)
एकादशी माहात्म्य भाषा टीका	।।।)
एकादशी माहात्म्य भाषा में मोटाक्षर	।।)
माघ गणेश चतुर्थी मूल	)।।
भाद्र पद ,, ,,	)।।
महालक्ष्मी पूजा दिवाली की	≡)
सावित्री व्रत कथा भाषा टीका	।)
चन्दनषष्ठी सूर्यषष्ठी कथा भाषा टीका	≡)
मुक्ताभरण सप्तमी भाषा टीका	=)
जीवित पुत्रिका व्रत कथा भाषा टीका	–)
रविषष्ठी कथा भाषा टीका	–)

पता-भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, काशी

तुलसीविवाहपद्धतिः

सम्मति लेखक—काशी के सुप्रसिद्ध धुरन्धर कर्मकाण्डी श्री-पं० विद्याधर जी गौड़ (प्रिन्सिपल हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी)

तुलसीमाहात्म्य-पूजा-व्रतविधान लक्षप्रदक्षिणा-उद्यापन-नामगुण-प्रणाममन्त्र—स्पर्शमन्त्र-स्थानमार्जनमन्त्र-ग्रहणमन्त्र-विष्णुपूजा तथा विष्णु सहस्रनामसहिता]

आज तक तुलसीविवाहपद्धति कहीं भी नहीं छपी है । वैष्णवों को तथा स्त्रियों को इसकी जरूरत बराबर रहा करती है । जरूरत पड़नें पर पुरोहित वर्ग बड़े २ पण्डितों के यहाँ पद्धति समझने के लिए दौड़ मारा करते हैं । इस कठिनाई को दूर करने के लिये पद्धति का बनाना आवश्यक हो गया । अतः यह पद्धति बड़े परिश्रम के साथ तैयार की गई है । इसके साथ और भी बहुत से विषय दे दिये गये हैं जिनकी प्रतिदिन जरूरत पड़ा करती है । जिनमें तुलसी माहात्म्य, पूजनविधान, व्रतविधान, लक्षप्रदक्षिणा, उद्यापन, नाम, गुण, प्रणाममन्त्र, स्पर्शमन्त्र, स्थान-मार्जनमन्त्र, ग्रहणमन्त्र, विष्णुपूजनविधान और तुलसी चढ़ाने के लिये विष्णुसहस्रनामावलि तथा तुलसी आरती, विष्णु आरती आदि विषय हैं । विशेष परिचय पुस्तक देखने से होगा । मूल्य ॥)